नौका और नाविक

लेखक

अध्यात्मयोगी विश्वसन्त उपाध्याय

श्री पुष्कर मुनि जी महाराज

के सुशिष्य

साहित्यवाचस्पति श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

प्रकाशन

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय का १६८ वाँ पुष्प

पुस्तक
नौका और नाविक

लेखक
साहित्यवाचस्पति, साहित्यशिक्षण सचिव
श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

पृष्ठ सख्या ४२८

प्रथम प्रवेश
२२ अप्रैल १९८६
महावीर जयन्ती

मूल्य २५/- पच्चीस रुपया सिर्फ

प्रकाशक
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल, उदयपुर ३१३ ००१

मुद्रक
श्रीचन्द सुराना 'सरस' के लिए

समर्पण

- जिनका जीवन अध्यात्म साधना का
  पावन प्रतीक है।
- जो सिद्ध जपयोगी हैं
- जो विशिष्ट ध्यानयोगी है
- जो प्रबुद्ध ज्ञानयोगी हैं
- जिनका व्यक्तित्व अद्‌भुत है
- जिनमे चुम्बक की तरह आकर्षण है
- शेर की तरह निर्भीकता है
- गजराज की तरह आत्मिक मस्ती है
- चन्द्र की तरह सौम्यता है
- सूर्य की तरह तेजस्विता है
- जिनका कृतित्व अनूठा है
- जिन्होने अपने पावन प्रवचनो से
  जन-जन के अन्तर्मानस मे
  अध्यात्म की ज्योति प्रज्वलित की
- जिन्होंने सरस साहित्य से
  जन-जीवन मे नैतिकता का सचार किया
- जिन्होने अपने मगल पाठ से
  महामन्त्र नमोक्कार के प्रति
  अनन्य आस्था समुत्पन्न की
- उन्हीं सद्‌गुरुवर्य, विश्वसन्त
  उपाध्याय पूज्य पुष्कर मुनि जी महाराज
  के
  पवित्र कर कमलो मे
  अनन्त श्रद्धा के सदा

समर्पित

—देवेन्द्र मुनि

लेखक की कलम से

कहानी का प्रारम्भ

ससार के गहन रहस्यो को समझने और अनबूझ पहेलियो को सुलझाने के लिए वैज्ञानिक जगत मे एक प्रणाली प्रचलित है। इसे अग्रेजी मे कहा जाता है—Assumption अथवा Presumption

एक सकेत मान लिया जाता है अथवा कल्पित कर लिया जाता है और फिर उसके आधार पर आगे बढा जाता है, अध्ययन किया जाता है, परिणाम यह होता है कि रहस्य उजागर हो जाता है।

भूमडल के समान वायुभार वाले स्थानो पर खीची गई रेखाएँ (Isobars), ध्रुवो से भूमडल पर होती हुई जाने वाली रेखाएँ (Meridians), ये कर्क, मकर और भूमध्य रेखाएँ आदि क्या है ? कल्पित ही तो है।

इसी प्रकार बीजगणित के बीज, रेखागणित, त्रिकोणमिति आदि के आधार x, y, a, b, c, α, β, π, sin, cos, आदि कल्पित सकेत ही तो हैं, किन्तु इन सकेतो पर आधारित अध्ययन करके वैज्ञानिको ने प्रकृति के अनेक रहस्य उद्घाटित कर दिये हैं।

मानव जीवन भी एक पहेली है, अनबूझ रहस्य है। वह कहाँ से आया है ? इस जन्म से पहले क्या था ? जीवन मे सुख-दुख क्यो पा रहा है ? इस जीवन के बाद उसका क्या होगा ? मर कर कहाँ जायेगा ? यह सब मानव-जीवन के अनबूझ रहस्य ही तो हैं।

जब एक ही जीवन इतना रहस्यपूर्ण है तो इस जीव की ससार-यात्रा अथवा ससारी जीव की यात्रा तो कितनी रहस्यपूर्ण और उलझन-भरी होगी, इसके बारे मे केवल कल्पना ही की जा सकती है।

लेकिन यह कल्पना, आकाश कुसुमवत् कोरी कल्पना ही नही है, अपितु वैज्ञानिक क्षेत्र में मान्य सकेनात्मक है, आधार सहित है ठोस धरातल पर आधारित है। जिसकी परिकल्पना (preception) भी सत्य है और परिणाम भी सत्य।

जिस प्रकार विज्ञान के क्षेत्र मे वैज्ञानिक assumptions के आधार पर प्रकृति के रहस्यो को उद्घाटित करते है, उसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र मे भी इसी आधार पर जीवन के रहस्यो को सुलझाया जाता है, उजागर किया जाता है और सर्वजनभोग्य बनाया जाता है।

२. धर्म कथा (Religious tales)

३ लोककथा (Folk or Popular tales)

४ रूपक कथा (Allegorical tales)

स्थानाग सूत्र मे कथा के तीन भेद बताये गये है—

तिविहा कहा—अत्थकहा, कामकहा, धम्मकहा। —सूत्र १८९।

इन भेदो से पश्चात् स्थानाग, सूत्र २८२ मे धर्मकथा के उपभेद भी बताये गये हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि अर्थ-कथा और काम-कथा ससारविवर्द्धक होने के कारण जैन आचार्यो को उसका वर्णन अभिप्रेत ही नही था। उनकी प्रमुख रुचि धर्मकथा की ओर ही थी।

इसीलिए उन्होने (१) आक्षेपिणी, (२) विक्षेपणी, (३) सवेगिनी और (४) निर्वेदिनी—धर्मकथा के ये चार भेद बताये हैं।

भगवान महावीर ने और उनके पश्चात् जैन आचार्यो ने भी गहन तात्त्विक एव दार्शनिक, ग्रन्थियो को कथाओ के माध्यम से सर्वजनभोग्य बनाया है। इसके लिए उन्होने रूपक कथाओ का अवलम्बन लिया है। किन्तु यह ध्यातव्य है कि ये सभी रूपक कथाएँ कोरी कल्पना नही, अपितु सत्य है, सत्य सिद्धान्त पर आधारित है।

इसी कारण जैन आगमो मे अनेक रूपक कथाएँ मिलती है।

सूत्रकृताग सूत्र (द्वितीय स्कध, प्रथम अध्ययन) मे पुण्डरीक कमल के रूपक द्वारा मुक्ति-प्रयास को समझाया गया है। ज्ञाताधर्मकथा के तीसरे अध्ययन मे अण्डो के रूपक से सशय का फल दिखाया है। दूसरे अध्ययन मे धन्ना सार्थवाह तथा विजय चोर की कथा मे आत्मा और शरीर का रूपक है। चौथे अध्ययन मे दो कछुओ द्वारा सवर का, दसवे अध्ययन मे चन्द्रज्योत्स्ना द्वारा आत्म-ज्योति का, छठे अध्ययन मे तूबे के रूपक से कर्मलेप का, उदकजात मे जलशुद्धि द्वारा आत्मशुद्धि आदि अनेक रूपक कथाओ द्वारा धर्म तत्व को सरल व सरस भाषा मे साधारण जन के समझने योग्य बनाया गया है।

यह परम्परा आगमो से शुरू होकर पौराणिक काल तक चलती रही।

जैन सस्कृति के अतिरिक्त वैदिक और बौद्ध सस्कृति मे भी रूपक कथाओ का बाहुल्य है। महाभारत आदि ग्रन्थो मे अनेक रूपक कथाएँ प्राप्त होती हैं। पचतत्र और हितोपदेश नामक ग्रथो मे भी रूपक कथाओ का भण्डार भरा हुआ है, जिनमे पशुओ के रूपको द्वारा नीति एव सदाचार की शिक्षा दी गई है।

रूपक कथा : रचना वैशिष्ट्य और हेतु

सूक्ष्म तत्वों और अमूर्त भावों को मूर्त अथवा स्थूल रूप देकर उन्हें मूर्त एवं ग्राह्य बनाने का सर्वाधिक शक्तिशाली माध्यम रूपक कथा है। इसमें विभिन्न प्रतीकों और उपमानों का प्रयोग किया जाता है। उपमानों के कारण इसमें सहज गम्यता आ जाती है। सप्राण होकर श्रोता के मन की गहराई में पैठ जाती है। प्रतीकों और उपमानों के कारण रोचकता और उत्सुकता का तत्व विशेष रूप से समाविष्ट हो जाता है।

इसकी रचना में रचनाकार के विशिष्ट कौशल की अपेक्षा होती है। वह ऐसे प्रतीकों और उपमानों का प्रयोग करता है, जो श्रोता अथवा पाठक में दैनंदिन जीवन-व्यवहार में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हों।

इस दृष्टि से सूत्रकृतांग सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र और समराइच्चकहा के कुछ रूपक बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।

सूत्रकृतांग, द्वितीय श्रुतस्कंध के प्रथम अध्ययन में एक विशाल सरोवर के मध्य में अवस्थित सर्वोत्तम कमल का रूपक दिया गया है। चारों दिशाओं से चार पुरुष आते हैं, कमल प्राप्त करने के लिए ललचाते हैं, सरोवर में पैठकर उस कमल तक पहुँचना चाहते हैं, किन्तु वहाँ तक पहुँच नहीं पाते, सरोवर के कीचड़ में फँसकर रह जाते हैं।

यहाँ सरोवर संसार का प्रतीक है, इसमें भरा जल तथा कीचड़ संसार के काम-भोग हैं, कमल मोक्ष का प्रतीक है, सरागी साधक इन चार पुरुषों के प्रतीक हैं, वे संसार की मोहमाया में फँसकर मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाते।

किन्तु एक अन्य साधक है, वह निस्पृह है, सरोवर में नहीं उतरता, अर्थात् काम-भोगों में नहीं फँसता, संसार रूपी सरोवर के किनारे पर ही खड़ा रहता है और अपनी निस्पृहतापूर्ण साधना से मुक्तिरूपी कमल प्राप्त कर लेता है।

इसी प्रकार अन्य अनेक रूपक कथाएँ भी आगमों में मिलती हैं।

यह परम्परा आगे भी चलती रही। हरदेव की अपभ्रंश भाषा में रचित 'मयणपराजयचरिउ', यशपाल (वि० १३वीं शताब्दी) रचित 'मोह-राज पराजय' नाटक, मेरुतुंग सूरि (वि० १४वीं शताब्दी) रचित 'प्रबन्ध चिंतामणि' का परिशिष्ट भाग आदि रचनाएँ उत्तम रूपक कथाएँ हैं।

किन्तु आचार्य सिद्धर्षि (वि० १०वीं शताब्दी) रचित 'उपमिति भवप्रपञ्च कथा' सर्वाधिक विस्तृत, लम्बी और उत्कृष्ट रूपक कथा है।

रचनाकार सिद्धर्षि

सिर्द्धपि के गृहस्थाश्रम का नाम सिद्ध था। ये गुजरात के नगर श्री मालपुर के निवासी थे। इन्हे द्यूतव्यसन था। माता की प्रतारणा से ये घर से वापिस लौटे और धर्मस्थानक मे पहुँच गये। वहाँ मुनियो के शात जीवन से प्रभावित होकर गर्गर्षि से श्रामणी दीक्षा ग्रहण कर ली। साधना मे सलग्न हुए।

आप सिद्धहस्त लेखक थे। सस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पडित थे। आपने आचार्य सिद्धसेन दिवाकर के 'न्यायावतरण' और आचार्य धर्मकीर्ति रचित 'उपदेशमाला' पर श्रेष्ठ टीकाएँ लिखी। किन्तु आपकी श्रेष्ठतम मौलिक रचना 'उपमिति भवप्रपच कथा' है।

इस ग्रथ को लिखने की प्रेरणा उन्हे अपने गुरुभ्राता श्री उद्योतन सूरि से प्राप्त हुई। श्री उद्योतन सूरि ने एक बार आप से कहा—

"आचार्य हरिभद्र सूरि की 'समराइच्च कहा" बहुत ही भावपूर्ण रचना है। तुम भी ऐसी ही किसी कृति का निर्माण करो।"

इस पर सिद्धर्षि ने कहा—

"कहाँ सूर्य और कहा खद्योत। मेरी और आचार्य हरिभद्र की क्या तुलना। वे गम्भीर विद्वान है और मैं मदमति।"

लेकिन फिर भी उद्योतन सूरि इन्हे प्रेरणा देते रहे, उत्साह बढाते रहे। तब इन्होने उत्साहित होकर रूपक शैली मे एक ऐसी कथा लिखने का निश्चय किया जिसमें ससारी जीव की आदि (असव्यवहार राशि) से लेकर अन्त (मोक्ष प्राप्ति) तक की सपूर्ण यात्रा का चित्रण हो जाय। यह कार्य रूपक शैली मे ही सभव हो सकता था। अत इन्होने रूपक शैली ही अपनाई और इसका परिणाम आया—'उपमिति भवप्रपच कथा' के रूप मे।

इस कथा का प्रणयन राजस्थान के भीनमाल नगर मे ज्येष्ठ शुक्ला ५ गुरुवार वी० नि० १४३२ मे सम्पन्न हुआ।

कथा का सक्षिप्त परिचय

प्रस्तुत रचना में आठ प्रस्ताव हैं। उसमे से प्रथम प्रस्ताव 'कथामुख' की रचना तो भूमिका रूप मे हुई है। यह कथा का मुख अथवा प्रवेश द्वार ही है। इसके अन्त मे रूपक का रहस्य भी खोल दिया गया है।

द्वितीय प्रस्ताव मे प्रारम्भ मे कर्मपरिणाम आदि का सक्षिप्त परिचय देने के उपरान्त सदागम (केवली आचार्य) के समक्ष प्रज्ञाविशाला

(प्रवर्तिनी साध्वी महाभद्रा), अग्रहीतसकेता (राजकुमारी सुललिता) और राजकुमार भव्यपुरुष (शखपुरनरेश श्रीगर्भ का पुत्र) को बैठे हुए दिखाया गया है। उसी समय कुछ लोग (सरकारी कर्मचारी) एक चोर को लेकर राजमार्ग से निकलते है। वह चोर सदागम की शरण ले लेता है।

चोर भी वह वास्तविक चोर नही है। वह चक्रवर्ती अनुसुन्दर है। अग्रहीतसकेता को प्रबुद्ध करने के लिए वह चोर का रूप बना लेता है।

सदागम के निर्देश से चोर अपनी आत्मकथा सुनाने लगता है।

बस, इसी बिन्दु से कथा का प्रारम्भ होता है। चोर की कथा वास्तव मे ससारी जीव की कथा है।

इस प्रस्ताव मे ससारी जीव असव्यवहार राशि से निकल कर व्यवहार राशि मे आता है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय के भव पूरे करके पचेन्द्रिय पशु और फिर मनुष्य बनता है।

मनुष्य नदीवर्धन के रूप मे वह क्रोध कषाय और हिंसा के वश मे होकर घोर पाप करता है, परिणामस्वरूप नरक मे जाता है। स्पर्शन (काम वासना) के कारण उसकी दुर्गति भी होती है।

साथ ही मनीषी आदि की सवेगवर्द्धिनी वैराग्योत्पादक कथाएँ भी समानान्तर चलती है।

तृतीय प्रस्ताव मे भी ससारी जीव के नदीवर्धन रूप की ही कथा है। यहाँ भी वह हिंसा के वश मे है। क्रोध का नाम वैश्वानर दिया गया है।

चतुर्थ प्रस्ताव मे नदीवर्धन का जीव रिपुदारण के रूप मे जन्म लेता है और मान कषाय (शैलराज) तथा मृषावाद और कपट के साथ मैत्री कर लेता है। परिणाम फिर वही भवभ्रमण और नरकगमन।

पचम प्रस्ताव मे उसका सम्पर्क माया और स्तेय के साथ हो जाता है। इस जन्म मे ससारी जीव का नाम वामदेव है।

छठे प्रस्ताव मे वामदेव का भव पूरा करके वह पुन मानव बनता है और उसका नाम धनशेखर रखा जाता है। यहाँ वह लोभ कषाय और मैथुन सज्ञा के वश मे होकर पाप-कर्म करता है। अपने मित्र को भी समुद्र मे धक्का दे देता है।

सातवें प्रस्ताव मे ससारी जीव धनवाहन बनता है। यहाँ वह महा-मोह और परिग्रह के वश मे हो जाता है। अनेक प्रकार के अनाचार करके

और जनता पर कर लगाकर अपने राजकोष को भरता है। अन्त में वह मरण प्राप्त करके भव भ्रमण करता है।

फिर वह मनुष्य बनता है। उसका नाम अमृतोदर है। वहाँ वह धर्म की ओर उन्मुख होता है, द्रव्य-श्रावकधर्म का पालन करके देवगति मे देव बनता है। यही से उसकी उन्नति का क्रम शुरू होता है।

देव भव पूरा करके वह मनुष्य बनता है। यहाँ वह श्रमण व्रत स्वीकार कर लेता है। देव-गुरु-धर्म की निन्दा कर के फिर कुयोनियो मे भटकता है।

पुन वह विशद नाम का राजकुमार बना, यहाँ वह फिर सम्यग्दर्शन आदि के सम्पर्क मे आता है और देवभव प्राप्त करता है।

आठवें प्रस्ताव मे वह गुणधारण नाम का राजकुमार बनता है। यहाँ वह उन्नति की ओर गति-प्रगति करता है।

इस प्रस्ताव के चार विभाग किये जा सकते हैं।

प्रथम विभाग गुणधारण के भव मे कर्म, काल, स्वभाव, भवितव्यता, पुण्योदय आदि के कार्य बताये गये है।

दूसरे विभाग मे चोर (ससारी जीव) के रहस्य को अनावृत कर दिया गया है। दूसरे शब्दो मे सपूर्ण कथा का रहस्य खुल गया है।

तीसरे विभाग मे सभी प्रमुख पात्रो का सम्मिलन के साथ-साथ उनकी प्रगति को भी स्पष्ट बता दिया गया है।

चौथे विभाग मे चोर—वास्तव मे अनुसुन्दर चक्रवर्ती और यथार्थ मे ससारी जीव की मुक्ति दिखाकर कथा का समापन कर दिया गया है। साथ ही अन्य प्रमुख पात्रो की मुक्ति का सकेत भी कर दिया है।

इस सक्षिप्त कथा सार से स्पष्ट है कि प्रस्तुत कथा मे ससारी जीव की सम्पूर्ण यात्रा का वर्णन कर दिया गया है।

ससारी जीव की ससार यात्रा के साथ-साथ ही प्रबुद्ध जनो की अन्तर्कथाएँ भी गुम्फित की गई है।

रचना कौशल

प्रस्तुत कथा मे रोचकता तथा विविधता का समावेश करने के लिए आचार्य सिद्धर्षि ने अनेक उपकथाएँ, अन्तंकथाएँ, छोटे-छोटे रूपक, लघु कथाएँ तथा अन्य प्रेरक आख्यान भी दिये है।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे पुण्य और पाप की, धर्म और अधर्म की धाराएँ समानान्तर रूप से बह रही है। ससारी जीव को उसके प्रत्येक मानव-भव

मे सत्सगति प्राप्त हुई है। आचार्यों—केवली मुनिराजों की देशना भी उसने सुनी है। उनके जीवन-चरित्र और दीक्षा के निमित्त भी उसे बताये गये हैं। किन्तु विषय-कषायो मे रचे-पचे रहने के कारण वह उनसे लाभ न उठा सका; और जब लाभ उठाया तो शनै शनै उन्नति करके अन्त मे मुक्त हो गया।

आचार्य श्री के रचना कौशल की विशिष्टता यही है कि रूपक कथा होते हुए भी तथा इसकी विषय-वस्तु गहन दार्शनिक होते हुए भी उस मे नीरसता नही आने पाई है। वर्णन-वैचित्र्य और विषय-परिवर्तन के कारण इस कृति मे दीर्घ उपन्यास का सा रग आता है।

भव प्रपच क्या है ?

जैन-धर्म की दृष्टि मे भव-प्रपच है—पाँचो इन्द्रियो के विषय और क्रोध आदि चारो कषाय। साथ ही इन सब का सरदार है महामोह। इसके परिवारीजन हास्य, रति, शोक, भय, काम आदि हैं।

प्रस्तुत कथा मे मोह के सम्पूर्ण परिवार तथा उसके दुष्परिणामो का अकन हुआ है। साथ ही धर्मराज के सम्पूर्ण परिवार का अकन एव उसके शुभ परिणामो का भी दिग्दर्शन कराया गया है।

वास्तविक स्थिति यह है कि इस द्वन्द्वात्मक जगत मे एकान्त स्थिति कही नही है। सुखमिश्रित दुःख है तो दुःखमिश्रित सुख भी है। धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप, आदि सभी कुछ है। और यही सब भवप्रपच है। इसी का वर्णन करना इष्ट था जिसमे रचनाकार पूर्ण रूप से सफल हैं।

रचना की विशेषताएं

इसकी विशेषताएँ दो रूपो मे प्रगट की जा सकती हैं—प्रथम धार्मिक रूप मे और द्वितीय साहित्यिक रूप मे।

धार्मिक दृष्टि से तो इसमे उन सभी बातो का वर्णन आ गया है जिनके कारण जीव ससार मे भ्रमण करता है और साथ ही उन हेतुओ का भी सागोपाग वर्णन है जिनके कारण वह ससार सागर से पार हो जाता है, मुक्ति के शाश्वत और अव्याबाध सुख को प्राप्त कर लेता है।

साहित्यिक दृष्टि से तो यह अनुपम ग्रथ है ही। यह ससार की सबसे प्राचीन और दीर्घ रूपक कथा है। बनियन (Bunyan) की पिलग्रिम्स प्रोग्रेस (Pilgrim's Progress) और फ्रासीसी कृति दी पिलग्रिमेज ऑफ मैन (The Pilgrimage of Man) इसकी तुलना मे आकार मे भी लघु हैं और प्रभाव मे भी लघु।

इसी कारण डा० हरमन जेकोबी ने कहा है—

I did find something still more important The great literary value of U Katha and the fact that it is the first allegorical work in Indian literature

वस्तुत देखा जाय तो यह विश्व साहित्य का सर्वप्रथम विराटकाय रूपक ग्रथ है। इसमें किसी व्यक्ति के एक ही जीवन-यात्रा का वर्णन नही है, अपितु उसके अनेक जन्मो का गतियो का वर्णन है, जो अत्यन्त रोचक शैली मे हुआ है। इसमे प्रयुक्त सभी नाम, जैसे—चित्तरम उद्यान, आनन्द नगर, चित्तविक्षेप सिंहासन आदि साहित्यिक और विशेष अर्थ लिए हुए हैं। सभी भावपूर्ण हैं। कोई भी नाम निरर्थक नही है।

प्रस्तुत सस्करण का नाम हेतु

श्रावस्ती नगरी के तिन्दुक उद्यान मे भ० पार्श्वनाथ के चौथे पट्टधर केशीकुमार श्रमण और भ० महावीर के पट्ट शिष्य गौतम गणधर के मध्य विभिन्न विषयो पर प्रश्नोत्तर चल रहे थे। उस वार्तालाप के मध्य गौतम गणधर ने कहा—

सरीरमाहु नाव त्ति जीवो वुच्चइ नाविओ।
ससारो अण्णवो वुत्तो ज तरति महेसिणो॥

—यह शरीर नाव है और जीव नाविक, तथा यह भव (ससार) सागर है, इस भव सागर को महर्षि गण पार करते है।

जिस समय मैं आचार्य सिद्धर्षि की उपमिति भवप्रपचकथा को पढ रहा था, उस समय उत्तराध्ययन सूत्र की उक्त गाथा मेरे चिन्तन मे उभर आई। इसका कारण यह था कि उपमिति भवप्रपच कथा भी रूपक कथा है और उक्त गाथा में भी रूपक है, शरीर को नौका, जीव को नाविक और ससार को समुद्र से उपमित किया गया है।

इसीलिए मैंने अपनी इस नवीन कृति का नाम 'नौका और नाविक' रखा है। इसका आधार है—आचार्य सिद्धर्षि की रचना 'उपमिति भव प्रपच कथा।' उस कथा को मैंने अपने शब्दो में ढाल दिया है। बहुत ही विस्तृत कथा को सक्षिप्त आकार दिया है।

ज्येष्ठभगिनी महासती परम विदुषी पुष्पवती जी म० की प्रबल प्रेरणा रही कि उपमिति भवप्रपच कथा को सक्षिप्त मे प्रस्तुत किया जाय तो अधिक श्रेयस्कर होगा, साथ ही परमादरणीय प्रतिभामूर्ति मातेश्वरी महासती स्वर्गीया श्री प्रभावती जी म० की भी यह इच्छा थी अत उनकी इच्छा को मूर्त रूप देना मेरा अपना कर्त्तव्य था।

निष्पुण्यक ने धर्मबोधकर की वात मान ली। उसकी रुचि अब कुभोजन से हट चुकी थी। फिर भी एक दिन उसने महाकल्याणक भोजन भर पेट लेने के बाद खेल-खेल मे थोडा अपना कुभोजन भी कर लिया। लेकिन इससे उसे ग्लानि हुई। सद्बुद्धि की उपस्थिति में उसने कुभोजन किया था, इसलिए उसका दूपित प्रभाव भी दृष्टिगोचर होने लगा। कुभोजन के दूपित प्रभाव को देखकर निष्पुण्यक को उससे एकदम विरक्ति, उपेक्षा और घृणा हो गई। उसने तुरन्त निश्चय किया कि राज्य पाने के बाद पिछले दारिद्र्य को कौन चाहता है? कोई भी नही। महाकल्याणक-जैसे तृप्तिकर, स्वास्थ्यकर भोजन को खाने के बाद कुभोजन खाने का मेरा भी अब मन नही रहा। अब मैं स्वेच्छा से ही इसका त्याग करता हूँ। विचारपूर्वक त्याग के कारण अब मुझे कभी अपने त्याग-निश्चय में परिवर्तन नही करना पडेगा।

निष्पुण्यक ने अपने शुभ सकल्प की बात सद्बुद्धि से कही। सद्बुद्धि ने उसका भिक्षापात्र लेकर उसका कुभोजन फेक दिया और उसे शुद्ध जल से धोकर उसमें महाकल्याणक भोजन भर दिया।

धर्मबोधकर, तद्दया ने निष्पुण्यक के शुभ सकल्प की सराहना की। राजभवन के सभी प्राणी अब निष्पुण्यक को अपने साथ ही रखने लगे। सर्वथा नीरोग रहकर निष्पुण्यक अब आनद का जीवन जीने लगा। कभी-कभार कोई रोग उभर भी आता तो वह तुरन्त ठीक हो जाता। अब निष्पुण्यक के जीवन में सुख का सागर ठाठे मार रहा था। □

[७] नाम-परिवर्तन निष्पुण्यक सपुण्यक बना

निष्पुण्यक का जीवन-परिवर्तन देखकर राजमहल के सभी लोग अत्यधिक प्रसन्न थे। एक बार सबने मिलकर कहा—

निष्पुण्यक पहले महारोगी था। दारिद्र्य, अभाव, अतृप्ति, असतोप, लोभ, मोह आदि से ग्रस्त था। रोगजनित पीडा से छटपटाता रहता था और करुण क्रन्दन करता रहता था। लेकिन इसे देखकर कौन कहेगा कि यह वही निष्पुण्यक है? इसकी देह हृष्ट-पुष्ट और कान्तिमयी है। अब रोग का लेश भी नही रहा। महाराज सुस्थित की इस पर कृपा है। धर्मबोधकर और तद्दया इस पर सदा प्रसन्न रहते है। सद्बुद्धि कभी

इसका साथ नही छोडती। अत इसे अब निष्पुण्यक कहना विरोधाचार कहलायेगा। आज से इसका नाम अब सपुण्यक हुआ।

निष्पुण्यक अब सपुण्यक नामधारी हो गया। अब सभी उसे सपुण्यक कहने लगे। निष्पुण्यक की आगे की कहानी कहने-बताने के लिए अब हम भी उसे सपुण्यक ही कहेगे।

एक दिन सपुण्यक ने तद्दया से पूछा कि मैं तो निष्पुण्यक--पुण्यो से हीन था। फिर मुझे तीनो दिव्यौषधो की प्राप्ति कैसे हो गई ?

इस पर तद्दया बताने लगी कि सपुण्यक ! जो जीव जन्म से दरिद्री और अभागा होता है, वह तो चक्रवर्ती हो ही नही सकता और जिसने पहले कभी कुछ दिया नही है, वह कभी कुछ पा ही नही सकता। लेने-देने, और आदान-प्रदान का नियम तो अटल और शाश्वत नियम है। तुमने पूर्वभव मे किसी को तीनो दिव्यौषधे दी थी। इसीलिए तुमको इस जन्म मे मिली हैं।

यह सुनकर सपुण्यक बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तद्दया से कहा कि अब मैं प्रचुर मात्रा मे इन औषधो का वितरण करूँगा, जिससे ये मुझे फिर भरपूर मिल सके।

सपुण्यक तीनो औषधो को लेकर प्रतीक्षा करता कि कोई उससे मांगे। लेकिन राजमहल के लोगो को तो तीनो औषधे सहज ही प्राप्त थी। तब कोई उससे क्यो लेता ? अत निराश सपुण्यक तद्दया और सद्बुद्धि के परामर्श से महल के बाहर औषधे देने गया तो किसी ने नही ली और उल्टे उसका मजाक उडाने लगे कि कल का भिखारी आज दाता बना घूमता है। बहुत निराश होकर सपुण्यक पुन राजमहल मे लौट आया।

सपुण्यक वस्तुत अपने को पुण्यवान समझ कर औषध दान देने की इच्छा करता था। धर्मबोधकर और तद्दया द्वारा प्रशसा होने के कारण उसे अहकार हो गया था कि मैं अब सभी का कल्याण करने मे समर्थ हूँ। एक दिन सपुण्यक ने सदा साथ रहने वाली सद्बुद्धि से ही पूछा कि क्या करूँ ? कोई भी मेरे पास औषध लेने नही आता। सद्बुद्धि ने परामर्श दिया कि तुम महल से बाहर जाकर घोषणा करो कि जिसे औषध की आवश्यकता हो मुझसे ले जाए। सपुण्यक ऐसा ही करने लगा। वह गली-गली, घर-घर जाकर चिल्ला-चिल्लाकर कहता कि रोगी जन मुझसे औषधे ले ले। लेकिन स्थिति ज्यो की त्यो रही। लोग उसकी उपेक्षा करते, कुछ हँसी उडाते और

कुछ भर्त्सना भी करते। हाँ, कोई भिखारी ही उससे औषध ले लेता। लेकिन सपुण्यक तो यह चाहता था कि सभी लोग उससे औषध ले। जब उसकी चाह पूरी नही हुई तो उसने पुन सद्बुद्धि से पूछा। सद्बुद्धि भी एकाएक कुछ भी नही बता सकी। उसने महाध्यान मे प्रवेश किया और पूरी वस्तुस्थिति जानने के बाद सपुण्यक को समझाया—

"सपुण्यक! जहाँ से अधिक लोग आते-जाते है, तू उस राजमार्ग पर औषधे रख दे और स्वय अलग बैठ जा। जो लोग तेरे पहले के दारिद्रय के कारण तेरे पास औषध लेने नही आते थे, उन्ही मे कुछ जरूरतमन्द अवश्य होगे। औषधो के पास किसी को बैठा न देखकर वे औषधे लेने उनके पास अपने आप—विना बुलाये ही आयेगे। इनमे से कोई एक पुण्यवान तेरी औपधे ले जाए तो तेरी इच्छा पूरी हो जाएगी। यदि कोई ज्ञानी या तपस्वी तेरी औषधे ले जाएगा तो तेरा कल्याण ही हो जाएगा।"

सपुण्यक ने वही किया, जो सद्बुद्धि ने उसे बताया। जिस प्रकार सपुण्यक का कल्याण हुआ, उसी प्रकार अन्य सभी का कल्याण होगा। लेकिन शर्त यही है कि वह भी प्रीति-प्रतीति, विचार और सद्बुद्धि के परामर्श से औषधे ग्रहण करे। ऐसा व्यक्ति सुस्थित राजा का कृपा पात्र होगा और धर्मवोधकर तथा तद्दया सदा उसका कल्याण करते रहेगे। ऐसा व्यक्ति सपुण्यक की तरह अखण्ड सुख का अधिकारी और भोक्ता हो जाएगा।

निष्पुण्यक—सपुण्यक की कथा हमारी अपनी ही कथा है। अब हम इस कथा का अप्रस्तुत रूपक-रहस्य भी समझाते है, जिससे आपकी भेट स्वकर्म द्वारपाल से हो जाए। □

रूपक-रहस्य : कथा-दर्शन

[नगर : यह जगत अदृष्टमूलपर्यंत नगर है। नगर के बाजार, जन्मान्तरो की शृंखला। किराणा आदि नाना प्रकार के सुख-दुख। किराणा आदि वस्तुओ का मूल्य, पाप-पुण्य। शरारती नटखट बालक जो निष्पुण्यक को परेशान करते थे, ये सब क्रोध, मान, माया, लोभ कषायो का कोलाहल। नगर का दुर्ग महामोह। दुर्ग के चारो ओर की खाइयां तृष्णाएं, उनमे भरा जल, विषय-वासना। इस प्रकार अदृष्टमूल-पर्यन्त नगर की सब विशेषताएं, इसी ससार की विशेषताएं है।

निष्पुण्यक सर्वज्ञशासन अथवा सद्धर्म प्राप्त होने से पूर्व जीव निष्पुण्यक रूप है। निष्पुण्यक पुण्यहीन या अत नाम की सार्थकता। वह महोदर था, इसी प्रकार यह जीव भी विषय-वासना रूपी भोजन से कभी तृप्त नही होता। जैसे निष्पुण्यक की कुभोजन पर अतिशय प्रीति थी, वैसे ही ससारी जीव भी विषय-वासना को चाह कर भी छोड नही पाता। निष्पुण्यक दरिद्री—अभावग्रस्त था। इस जीव के पास भी सद्धर्म रूपी धन नही है, अत दरिद्र है। निष्पुण्यक अनाथ था। सर्वज्ञ स्वामी के अभाव मे जीव भी अनाथ है। इसी प्रकार निष्पुण्यक की अन्य विशेषताएं भी जानें।

सुस्थित राजा परमात्मा, जिनेश्वर ही सुस्थित राजा है।

द्वारपाल राग द्वेष, मोह आदि अनेक द्वारपाल हैं, जो जीव को सुस्थित राजा के राज महालय मे प्रवेश नही करने देते। एक मात्र स्वकर्मविवर नामक द्वारपाल ही जीव को जिनेश्वर प्रणीत धर्ममहालय मे ले जाता है। स्वय के कर्मों का विच्छेदक ही स्वकर्मविवर द्वारपाल है। अत राजभवन रूपी धर्मशासन के निकट पहुंचने पर स्वकर्मविवर द्वारपाल ही जीव को ग्रन्थिभेद करवाकर सर्वज्ञ शासनमन्दिर मे प्रवेश कराता है।

राजभवन के मन्त्री सर्वज्ञ शासन के उपाध्याय मन्त्री है। राजमन्दिर की प्रजाएं साध्वियां समझें। आचार्यों को धर्मबोधकर समझें।

औषधें ज्ञान को विमलालोक अजन जाने, दर्शन को तत्त्वप्रीतिकर जल समझें और महाकल्याणक खीर को चारित्र समझें। अपनी बुद्धि जो सद्‌मार्ग की ओर ले जाती है, वह सद्‌बुद्धि नाम की सेविका है, जो हर समय साथ रहती है। उसकी नियुक्ति धर्माचार्य ही करते हैं, वे ही सद् असद् का विवेक जाग्रत कर सद्‌बुद्धि को जाग्रत कर देते हैं।

मनुष्य-गति-वर्णन

[१] एक था राजा, एक थी रानी

बात बहुत पुरानी भी है और नई भी। बात क्या है, एक राजा-रानी की एक शाश्वत कहानी है। राजा और रानी—दोनो ही अमर हैं—कभी मरते नही। इन दोनो के नाटक, लीलाएँ और खेल-तमाशे निरन्तर चलते रहते है। इनकी लीलाएँ बडी अद्‌भुत और अनूठी हैं। अब आप यह जानने को भी उत्सुक होगे कि राजा का नाम क्या है और वह कैसा है, कहाँ रहता है। राजा-रानी का परिचय देने से पहले हम आपको उनकी नगरी का परिचय देगे, क्योकि उनकी नगरी, जिसमे वे रहते हैं, भी बहुत अद्‌भुत और बहुत अनूठी है। कथानायक राजा-रानी की तरह उनकी नगरी भी शाश्वत-सनातन और अनादि है।

तो वह नगरी है 'मनुजगतिनगरी'। नाम कुछ लम्बा है तो उसके स्वरूप का वर्णन और भी अधिक विस्तृत है। सक्षेप में मनुजगति नगरी की विशेषताएँ है कि यह नगरी धर्म की उत्पत्ति भूमि है और अर्थ का मन्दिर भी है, काम भी यही जन्म लेता है। मोक्ष चाहने वाले इसी नगरी मे बसेरा लेते हैं—यह नगरी मोक्ष का कारण है। मनुजगति नामक इस नगरी मे पचकल्याण आदि अवसरो पर महोत्सव होते रहते है।

भरतक्षेत्र आदि इस नगरी के बड़े-बडे आवास क्षेत्र—मुहल्ले हैं। वडे-वडे पर्वत, सागर, नदियाँ, वन, मैदान इस नगरी मे असख्य है। इस नगरी की सबसे बडी विशेषता यह है कि मूल्य देकर आप शुभ-अशुभ वस्तुएँ खरीद सकते है। मुख्य रूप से इस नगरी की तीन बडी बस्तियाँ ये हैं—जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्कर-द्वीप। हजार मुख वाले शेष भी मनुजगति नगरो का वर्णन नही कर सकते। अत सक्षेप मे ही इस नगरी का वर्णन करने के बाद हम यहाँ के राजा-रानी के बारे मे कुछ रोचक बातें बताते है। अन्त मे इतना और बता दे कि इस नगरी मे भाग्यशाली और भाग्यहीन—दो प्रकार के प्राणी रहते हैं। इस नगरी मे रहते हुए भी जो मनुष्य धर्मसाधन द्वारा अपने को बधन-मुक्त नही करते, वे नर भाग्यहीन

हैं। स्वर्ग, नरक और मर्त्य—इन तीन बडे नगरो मे केवल मर्त्य नगर या मनुजगति नगरी ही एक मात्र ऐसा स्थान है कि जहाँ रहकर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारो पुरुषार्थों की साधना कर सकता है।

मनुजगति नगरी मे कर्मपरिणाम नामक राजा राज्य करता है। इस राजा की मुख्य रानी या पटरानी है कालपरिणति।

कर्मपरिणाम राजा अमित बलशाली है। अर्थात् इसके बल की सीमा नही है। इसकी सामर्थ्य के सामने बडे-बडे शूर-वीरो ने नाक रगडी है। स्वर्ग-नरक, पाताल तीनो लोक इसके अधीन है। अपने बल के कारण राजा कर्मपरिणाम इन्द्रादि को तृणा के समान ही समझता है।

असीमित बल वाला होने के साथ-साथ राजा कर्मपरिणाम दया-रहित भी है। यह छोटे-बडे किसी भी अपराध को क्षमा नही करता। नादानी, नासमझी, भूल-चूक या हँसी-मजाक में भी आप कोई अपराध कर बैठें तो यह दण्ड देने मे किंचित् भी रियायत नही करता। दूसरी बात यह कि दण्ड देते समय यह भेद-भाव भी नही रखता। इसके पास दण्ड देने की अगणित विधियाँ, प्रकार और रूप हैं। रोग-शोक, भय, मृत्यु आदि इसके दण्डो के मोटे-मोटे रूप हैं। यह आपको पेड से गिराकर आपकी टाँग भी तोड सकता है, नदी मे डुबाकर भी मार देता है और विशेष बात यह कि कभी बताकर दण्ड नही देता। जब यह आपको पेड से गिरायेगा तो आपसे यह नही कहेगा कि आपने अमुक अपराध किया था, इस कारण आपको पेड से गिराया है। आपको ही सोचना-समझना पडेगा कि हमने क्या अपराध किया था, जो यह दण्ड मिला। तो कर्मपरिणाम ऐसा विचित्र शासक है।

राजा कर्मपरिणाम बडा कौतुकी है। नाटक करना, नाटक देखना, निर्देशन देना, अभिनय करना, अभिनय कराना इसे बहुत अच्छा आता है। इस कार्य मे इसकी रानी कालपरिणति भी इसमे बहुत सहयोग देती रहती है।

कर्मपरिणाम के प्रताप से अनेक बडे-बडे शूरमा नरक की पीडा भोगते हैं तो यह बडा प्रसन्न होता है, क्योकि कौतुकी है। हँसाना-रुलाना, रुलाकर हँसाना और हँसाकर रुलाना इसके प्रिय कौतुक हैं। इसके आदेश से ही प्राणी शेर, कुत्ते, बिल्ली, गधे, कीडे-मकोडे आदि के रूप रखकर इसके सम्मुख नृत्य करते हैं। तीनो लोको मे ऐसा कोई शक्तिशाली नही है जो जीव को कर्मपरिणाम के कौतुक और पीडा देने से रक्षा कर सके। जो

नाटक राजा कर्मपरिणाम करवाते है, उस नाटक का नाम है ससार। सयोग-वियोग, हास्य, शृगार सभी रस इस नाट्य मे लबालव भरे रहते है। इस मच के वाद्य भी लोकोत्तर हैं, जैसे राग-द्वेष नामक तबले हैं। इन्हे बजाने वाले तबलची का नाम है दुष्टाभिसधि। इसी तरह इस नाट्य के सूत्रधार महामोह, नन्दी भोगाभिलाष, गायक मान-क्रोध आदि, विदूषक काम, मजीरे आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि और रगभूमि है लोकाकाश। और कहाँ तक कहे, कर्मपरिणाम राजा ऐसा राजा है जो परम स्वतन्त्र है इसके ऊपर अन्य कोई शासक नही है।

कर्मपरिणाम राजा की राजा की रानी है कालपरिणति, जो इस-जैसी ही है। इसके रूप की उपमा बडे सकोच के साथ इस प्रकार दी जा सकती है कि जैसे ऋतुओ मे शरद् ऋतु, शरद् ऋतु मे कुमुदिनी, कुमुदिनी मे कमलिनी, कमलिनी मे कलहसिका और कलहसिका मे राजहसिका है, वैसे ही सब रानियो मे कालपरिणति नामक रानी है, जो अपने पति को अत्यधिक प्रिय है। जैसे चन्द्र और चन्द्रिका, काया-छाया, जल और तरग अभिन्न है, वैसे ही कर्मपरिणाम राजा और कालपरिणति नाम-रूप से भिन्न होते हुए भी वस्तुत अभिन्न ही हैं।

सुषमा, दु षमा आदि महारानी कालपरिणति की प्यारी सखियाँ है। इस रानी के समर्थ दास-दासियाँ है—समय, मुहूर्त, रात, दिन, प्रहर, पक्ष, मास, वर्ष, युग, पल, क्षण आदि। इन समर्थ सेवको के बल पर रानी कालपरिणति डके की चोट जो चाहती है, वही करती है। राजा रानी—दोनो समान बलशाली है। अब इनसे कौन पार पा सकता है ?

कर्मपरिणाम राजा जब ससार नामक नाट्य का मचन करते हैं तो पात्रो-अभिनेताओ की सज्जा रानी कालपरिणति ही करती है। वह योनिरूपी परदे की आड मे बैठे पात्रो को मच पर लाती है। योनिरूपी नेपथ्य या परदे से बाहर होने के बाद ससार नाट्य का पात्र सबसे पहले रोने का अभिनय करता है। फिर क्रमश दुग्ध-पान, घुटनो के बल आँगन मे चलने, फिर डगमगाकर खडे होने आदि के खेल कालपरिणति आदेश देकर कर-वाती है। बालक से किशोर, किशोर से युवा, युवा से प्रौढ और प्रौढ से वृद्ध बनने के सभी कौतुक रानी कालपरिणति ही करवाती है। फिर शरीर छुडवा कर मरने का अभिनय भी यह कराती है। उसके बाद जीव को योनिरूपी परदे मे वेश बदलने भेज देती है और फिर नया जन्म देकर नये सिरे से नाटय कराती है। इसका यह क्रम निरन्तर चलता रहता है।

आने लगी । पूरी सभा का ध्यान उस कोलाहल की ओर खिंच गया । कुछ लोग शोर वाली दिशा को दौडे गए । बाद मे पता चला ससारी जीव नाम का एक चोर पकडा गया है । उसी के कारण कोलाहल हो रहा है । सभी ने उत्सुकता और जिज्ञासा के साथ ससारी जीव नामक चोर को देखा तो पाया कि उसकी वेशभूषा बडी विचित्र थी ।

ससारी जीव नामक चोर की देह पर राख पुती हुई थी तथा गेरु के घोल वाले हाथ के छापे लगे हुए थे । कठ मे कनेर के गडो की माला थी । टूटे मटके का ठीकरा उसके सिर पर छतरी की तरह रखा था । इसके साथ ही चोर के गले मे चुराया गया माल भी लटका हुआ था । राजा के सेवक उस चोर को घेरकर चल रहे थे और उसे गाली-गलौज दे रहे थे ।

चोर की दयनीय स्थिति देखकर प्रज्ञाविशाला पिघल गई । उसने सोचा कि इसकी रक्षा मात्र सदागम महाराज ही कर सकते हैं । अत वह समझा-बुझाकर चोर को सदागम के पास ले आई और वह प्रज्ञाविशाला की प्रेरणा से सदागम का शरणागत हो गया । 'रक्षा करो-रक्षा करो' की चोर की आर्त वाणी सुनकर सदागम ने उसे अभय कर दिया ।

सबके साथ चोर भी सभा मे बैठा तो अगृहीतसकेता ने उससे पूछा कि तुम चोर कैसे बने । इस पर चोर ने कहा कि मेरे बारे मे महात्मा सदागम सब कुछ जानते हैं, अत बताने की आवश्यकता नही है । लेकिन जब सदागम जी ने कहा कि यद्यपि मैं सब कुछ जानता हूँ, फिर भी तुम आप-बीती स्वय ही कहो । सदागम का आदेश पाकर ससारी जीव नामक चोर ने अपने बारे मे जानकारी देने से पहले एकान्त चाहा । सदागम के कहने से जब सब उठ गए और दो-तीन व्यक्ति ही रह गये तो चोर अपने बारे मे बताने लगा । □

[४] चोर का परिचय

ससारी जीव नामक चोर वक्ता बनकर आपबीती सुना रहा था— वह क्यो और कैसे चोर बना, इसके बारे मे बता रहा था । इस चोर कथा को सुनने वाले मात्र चार ही श्रोता थे—(१) सदागमजी महाराज, (२) भव्य पुरुष अथवा सुमति, (३) अगृहीतसकेता और (४) प्रज्ञाविशाला ।

× × ×

बडे-बडे नगर, नगरो मे छोटे पुर, पुरो से छोटे गांवो से परिपूर्ण इस

"मेरे रहते तुम्हे किसका डर है।" मनीपी ने कहा—"तुम सदागम के सेवक का नाम वता दो। नाम लेने से वह तुम्हारा क्या बिगाड देगा ?"

मनीषी ने वहुत आग्रह किया तो भय से कॉपते हुए स्पर्शन ने पहले तो चारो ओर देखा, फिर धीरे-से कहा—"उस पापी का नाम सतोष है।"

अब मनीषी समझ गया कि यह स्पर्शन वही स्पर्शन है, जिसके वारे मे विपाक ने प्रभाव को वताया था। यही मन्त्री विपयाभिलाष के आदेश से लोगो को ठगता फिरता है। हमे भी ठगने आया है। इसे हमने व्यर्थ वचाया। अच्छा-भला फॉसी लगाकर मर रहा था। अव मैं इसकी मित्रता त्याग दूगा। लेकिन एकदम यह प्रकट नही करू ँगा कि तुम मुझे अच्छे नही लगते। ऊपर से दिखावे का ही मेल-जोल रखू ँगा।

यह सोच मनीषी ऊपर दिखावे की मित्रता का निर्वाह करते हुए स्पर्शन के साथ उठता-बैठता था। लेकिन वाल की मित्रता दिखावे की नही थी। इस प्रकार जव काफी समय वीत गया तो एक दिन मनीपी, वाल और स्पर्शन बैठे थे। वातचीत के क्रम मे स्पर्शन ने दोनो राजकुमारो से पूछा कि ससार में सार तत्त्व क्या है। फिर स्वय ही उत्तर दिया–सासारिक सुख ही ससार में सार है। तुम लोग उसका नित्य सेवन कर सकते हो। मुझमे ऐसी योगशक्ति है कि मैं चाहे जिस व्यक्ति में अथवा चाहे जिस स्थान पर छिपकर वैठ सकता हूँ। फिर वे प्राणी मेरा ध्यान करे तो उन्हे नित्य सुख मिलता रहेगा।

स्पर्शन की यह टिप्पणी सुनकर मनीपी ने सोचा कि अव तो निश्चय ही स्पर्शन ने हमे ठगना शुरू कर दिया। लेकिन वाल ललचा उठा। उसने स्पर्शन को उपालम्भ दिया कि तुम इतने दिन से हमारे साथ हो, फिर अव तक अपनी योग-शक्ति का रहस्य हमसे क्यो छिपाये रहे। तुम्हारे रहते हम सुख का भोग नही कर पाये। पर अव तो तू हमें सुख देना शुरू कर दे।

वाल की वात सुनकर स्पर्शन प्रसन्न हुआ कि इस पर तो मेरा जादू काम कर गया। लेकिन मनीपी की उदासीनता देखकर सदेह मे पडा कि इसने कोई उत्सुकता नही दिखाई। अत उसने मनीपी से पूछा—तुम्हारा क्या विचार है ?

'मेरे मनोभाव का पता न चल जाए' यह सोचते हुए मनीपी ने कहा—"जो वाल चाहता है, वही मैं चाहता हूँ। अपनी योग-शक्ति का कुछ चमत्कार दिखाओ।"

मनीषी ने इशारे से मध्यमबुद्धि को बुलाया और उसे साथ लेकर वाल के पास से उठ गया। मनीषी ने मध्यमबुद्धि से कहा—इन दिनो पिताजी ही वाल से रुष्ट नही है, नगर का वच्चा-वच्चा इसके आतक से दुखी है। जो कुछ इसने कामदेव के मन्दिर मे कुकृत्य किया, वह सब जान गये है। भव-जन्तु कितना समझदार था जो स्पर्शन को छोडकर चला गया। वाल उसे 'आ वैल मुझे मार' की तरह साथ ले आया।

मध्यमबुद्धि सोचने लगा कि मनीषी ठीक कहता है। जिस कार्य मे रचमात्र भी सुख नही है, वाल स्पर्शन के बहकावे मे आकर उसी को सुख मानता है और दुख-पर-दुख उठाता चला जाता है। मैं भी अब मनीषी का अनुकरण करते हुए गुणसग्रह के प्रयत्न मे जुट जाऊँगा। मध्यमबुद्धि ने जब मन की वात मनीषी से कही तो वह वोला—भाई मध्यमबुद्धि! तुझे जैसा ठीक लगे, वैसा कर। मेरा कहना तो इतना ही है कि स्पर्शन को मुँह मत लगा।

× × ×

एक दिन अकुशलमाला और स्पर्शन—दोनो वाल के शरीर से निकल कर प्रकट हुए। पहले अकुशलमाला वोली—"वत्स! तूने मेरी कोख को सार्थक किया है। मेरे पुत्र को ऐसा ही होना चाहिए। तूने मनीषी को मुँह-तोड उत्तर देकर मेरा मन प्रसन्न किया है।" फिर स्पर्शन वोला—"सचमुच वाल तूने मेरे प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया है। तूने मनीषी से जो यह कहा कि वडे कार्यो को पूरा करने से पूर्व सकट आते ही है, यह तूने ठीक कहा। मनीषी पापी है। मध्यमवुद्धि उसकी वातो मे आ गया है, पर तू कभी उसकी वातो मे मत आना। अव हम तीनो ही एक दूसरे के सुख-दुख के साथी है।"

इतना कह स्पर्शन पुन वाल के शरीर मे प्रविष्ट हो गया। तदनन्तर अकुशलमाला भी प्रविष्ट हो गई। दोनो के प्रभाव से वाल पुन मदनकन्दली के लिए तडपने लगा। एक दिन वह रात्रि के प्रथम प्रहर मे महल से वाहर निकला और राजा शत्रुमर्दन के महल की ओर चल दिया। मध्यमवुद्धि ने उसे घर से वाहर जाते तो देखा, पर इस वार उसका पीछा नही किया। वह अव मनीषी के कहे अनुसार पूर्णत तटस्थ हो गया था।

पहरेदारो से आँखें वचाकर वाल शत्रुमर्दन के शयनकक्ष मे पहुँच गया। वहा रानी मदनकन्दली शृगार कर रही थी और उसकी शय्या खाली पडी थी। स्पर्शन के प्रभाव से वाल के मन मे शय्यासीन होने की इच्छा हुई

और वह लेट गया। थोडी देर वाद राजा शत्रुमर्दन भी वहाँ अगरक्षको सहित आ गया। राजा को देखकर वाल कुमार्गी होने से भयभीत होकर शय्या से नीचे गिर पडा। उसके गिरने से धमाका हुआ। राजा शत्रुमर्दन ने उसे तुरन्त वदी बनाया और विभीपण नामक सेवक को बुलाकर कहा कि इस पापी को दण्डित करो।

विभीषण ने बाल को तरह-तरह की यातनाएँ दी। उसकी देह मे कीले ठोकी। गरम तेल डाला। कोडो से पीटा। वाल रात भर हाय-हाय चिल्लाता रहा। सवेरे अनेक नागरिक राजमहल के सामने यह देखने खडे हो गये कि रात भर चिल्लाने वाला कौन है।

वाल को देखकर सभी नागरिक चिल्लाये—

'अरे, यह पापी अभी तक जीवित है? इसे तो मार ही देना चाहिए।"

राजा शत्रुमर्दन ने वाल को मृत्यु दड देने का निश्चय किया। बध-स्थल पर भेजने से पूर्व उसने सुबुद्धि मत्री से पूछा तो मत्री बोला—मैं पहले ही कह चुका हूँ कि हिंसा कार्य मे मेरी सलाह मत लेना। अत राजा ने सुबुद्धि के परामर्श लिये विना ही वाल वधिको को सौंप दिया।

वधिको ने वाल को गधे पर चढाकर काला मुँह कर दिया और दिन भर नगर मे घुमाया। रात्रि को उसे फाँसी लगाकर चले गए। लेकिन भावी या भवितव्यता की कृपा से रस्सी बीच मे ही टूट गई। वाल मूर्च्छित हो गया। वन की सुखद प्राणवायु के स्पर्श से बाल को होश आ गया और वह उठकर घर चला गया।

× × ×

इस कथा के श्रोता-वक्ता के दो वर्ग है। एक वर्ग मे प्रज्ञाविशाला, सदागम, भव्य पुरुष और अगृहीतसकेता श्रोता है—मुख्य श्रोता अगृहीत-सकेता ही है और ससारी जीव वक्ता है, जो तस्कर के रूप मे पकडा जाकर अपने अनेक जन्मो की कथा सुना रहा है।

दूसरे वर्ग मे ससारी जीव जब नदिवर्धन राजपुत्र बना था, तब विदुर उसको कथा सुना रहा था।

अगृहीतसकेता ने ससारी जीव से कहा—

"अनेक जन्मो में भटकने के बाद तुम नदिवर्धन बने। तुमने अपने चर विदुर से यह कथा सुनी। आगे की बात कहने से पहले यह बताओ कि

क्षितिप्रतिष्ठित नगर तो एक था, फिर उसके कर्मविलास और शत्रु-मर्दन—दो राजा कैसे हो गए। इस पर ससारी जीव ने कहा—

"अगृहीतसकेता ! कर्मविलास नगर के अन्तरग भाग का राजा है और शत्रुमर्दन उसके बाह्य भाग का। बहिरग राजा अपराधियो को बाह्य शारीरिक दड देते है। लेकिन अन्तरग राजा भीतर ही भीतर गुप्त रूप से अच्छे-बुरे कर्मो (अपराधो) का परिणाम (दण्ड) निश्चिन कर देता है। बाल को जो-जो दुख भोगने पडे, वे अन्तरग राजा उसके पिता कर्मविलास की प्रेरणा से ही भोगने पडे।

"अगृहीतसकेता ! विदुर ने नदिवर्धन के रूप मे मुझे जो आगे कथा सुनाई, उसे भी ध्यान देकर सुन।"

उधर विदुर नदिवर्धन से आगे कह रहा था कि मध्यमबुद्धि ने बाल पर जो बीती, वह सब जान लिया। वह उसके पास तो नही गया, पर थोडा स्नेह होने के कारण बाल की दुर्दशा सुनकर उसे दुख अवश्य हुआ। जब पुन विचार किया तो उसका दुख दूर हो गया और उसने सोचा कि मनीषी सर्वत्र प्रशसा पाता है। मैं भी यदि बाल का साथ पकडे रहता तो मेरी भी निन्दा होती। मैं जब से मनीषी के कहे अनुसार चल रहा हूँ, तब से कितना सुखी हूँ। मेरी भी कही निन्दा नही होती।

इस प्रकार विचार करने से मध्यमबुद्धि के हृदय मे बाल के प्रति जो थोडा स्नेह था, वह भी समाप्त हो गया।

मनीषी और मध्यमबुद्धि बडे सुख से जीवन व्यतीत कर रहे थे और बाल महल के बाहर ही नही निकलता था। वह भयभीत होकर जी रहा था।

[१५] मनीषी के प्रति राजा कर्मविलास की अनुकूलता

एक दिन राजा कर्मविलास ने बडी रानी शुभसुन्दरी से कहा—

"प्रिये, जो मनुष्य स्पर्शन को अपना मित्र बनाता है, मैं उससे रुष्ट रहता हूँ और उसे रानी अकुशलमाला के जरिये दडित करता हूँ। यही कारण है कि मैं बाल से रुष्ट हूँ और अकुशलमाला उसके अनुकूल है। लेकिन अब मैं मनीषी को अपनी अनुकूलता का पुरस्कार देना चाहता हूँ, क्योंकि वह स्पर्शन से दूर है। इस काम मे तुम मेरी मदद करो।"

पति की आज्ञा शिरोधार्य कर रानी शुभसुन्दरी सूक्ष्म रूप बनाकर मनीषी मे प्रविष्ट हो गई। उसके प्रविष्ट होते ही मनीषी की प्रफुल्लता और धर्मोत्साह द्विगुणित हो गया। राजा कर्मविलास के कहने से यही काम रानी सामान्यस्वरूपा ने किया, वह भी अपनी योगशक्ति से मध्यमबुद्धि मे प्रविष्ट हो गई। अपने इन दोनो पुत्रो को राजा कर्मविलास उन्नति के शिखर पर चढाना चाहता था।

एक बार क्षितिप्रतिष्ठित नगर के वाहर निजविलसित उद्यान में प्रवोधनरति आचार्य शिष्यमुनियो के माथ पधारे। शुभसुन्दरी और सामान्यस्वरूपा के योग प्रभाव से मनीषी और मध्यमबुद्धि आचार्य की वदना करने निजविलसित उद्यान मे पहुँचे। न चाहते हुए भी, 'इसका भी कल्याण हो' यह सोचकर मध्यमबुद्धि बाल को भी मुनि-वदन को ले गया। वहिरग भाग का राजा शत्रुमर्दन भी मुनि की वदना करने पहुँचा। मनीषी, मध्यमबुद्धि, शत्रुमर्दन आदि ने प्रवोधनरति की वहुमानपूर्वक वदना की। लेकिन बाल उपेक्षित भाव लिये बैठा रहा। शत्रुमर्दन के मत्री सुबुद्धि ने भी मुनि की वदना की। फिर सब आचार्य की देशना सुनने बैठ गए।

राजा शत्रुमर्दन ने आचार्य प्रबोधनरति से अनेक प्रश्न पूछे। आचार्य ने जो उत्तर दिया, उसका सार सक्षेप यह था कि सव क्लेशो की जड कर्म हैं। कर्म ही हमे सुख-दुख के झूले में झुलाते है। ससार के हर सुख के पीछे दुख छिपा रहता है। जब सयोग होगा तो वियोग भी निश्चित होगा। इसलिए सयोग को न चाहकर योग को चाहो, क्योकि योग अखण्ड होता है, उसमे वियोग नही होता।

ससार में एक मात्र धर्म ही सार है। मनुष्य का सबसे बडा स्वार्थ मन-कर्म-वचन से धर्म मे प्रेम होना चाहिए। धर्म का सहारा ही सच्चा सहारा है। इस रहस्य को वहुत लोग जानते है कि धर्म मनुष्य के लिए कल्पवृक्ष है, फिर भी सभी जीव धर्म को नही पकडते। इसका कारण यह है कि मनुष्य तत्काल सुख प्राप्त करना चाहता है और धर्म-साधन मे समय लगता है। अत मनुष्य इन्द्रियो का दास बनकर तात्कालिक सुख में डूबा रहकर धर्म से दूर रहता है।

स्पर्श, जीभ, नाक, आँख और कान—ये पाँच इन्द्रियाँ मनुष्य को उलझाये रहती है। मनुष्य सुखद-कोमल स्पर्श पाकर सुख की भ्रान्ति मे उलझ जाता है। उसे कठोर स्पर्श बुरा लगता है। इसी तरह वह सुगध को पसद और दुर्गन्ध को नापसद करता है। सुन्दर रूप का लोभी मनुष्य

कुरूपता से दूर रहता है और कानो से प्रशंसा-तारीफ सुनना पसंद करता है, बुराई सुनना नापसंद करता है। उसे कोयल की बोली अच्छी लगती है तथा कौए की कॉंव-कॉंव बुरी लगती है। जीभ से मीठा खाना पसंद करता है, कडुवे को थूक देता है। सभी इन्द्रियाँ दुर्जेय है। बडे-बडे वीर इनके वश मे रहते है।

मनुष्य को नचाने वाली, पहले सुख का आभास कराकर बाद में दुख देने वाली पॉंचो इन्द्रियो मे स्पर्शेन्द्रिय सबसे अधिक बलवान है। यह अकेली ही मनुष्य को नरक की ओर ले जाने में समर्थ है।

जब राजा शत्रुमर्दन ने पूछा कि स्पर्शेन्द्रिय को कोई वश में कर सकता है या नही तो आचार्य प्रबोधनरति बोले कि स्पर्शेन्द्रिय से प्रभावित चार प्रकार के मनुष्य होते है। मैं संक्षेप मे उन चारो का स्वरूप समझाता हूँ, फिर तुम इस शत्रुरूपा इन्द्रिय के धोखे से बचना जान जाओगे।

[१६] मनुष्यो के चार प्रकार

आचार्य प्रबोधनरति ने बताया कि स्पर्शेन्द्रिय के साथ सम्बन्ध बनाने-बिगाडने वाले चार प्रकार के मनुष्य होते है—(१) उत्कृष्टतम, (२) उत्कृष्ट, (३) मध्यम और (४) जघन्य या अधम। इनमे पहले उत्कृष्टतम के माता-पिता नहीं होते, ये स्वत ही जन्मते हैं। इन्हे भवजन्तु कोटि का प्राणी कहते हैं। शेष तीनो उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य की माताएँ तीन तथा पिता एक—कर्मविलास होता है। उत्कृष्ट की माता शुभसुन्दरी, मध्यम की सामान्यस्वरूपा और जघन्य की माता अशुभमाला होती है। संक्षेप में चारो का स्वरूप इस प्रकार है।

प्रत्येक जीव का इन्द्रियो के साथ सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। लेकिन जब मनुष्यो को यह समझाया जाता है कि स्पर्शेन्द्रिय शत्रुरूपा है, उसके धोखे मे मत आना तो उत्कृष्टतम प्राणी तुरन्त इसका त्याग करके संतोष को अपना लेता है। वह सभी कार्य उसके विरुद्ध करके संतुष्ट रहता है। जैसे कठोर धरती पर सोना, सुखद स्पर्श से दूर रहना और केश लुंचन करना आदि। उत्कृष्टतम प्राणी दीक्षा लेकर इन्द्रियों की दासता से मुक्त होकर अन्त मे संसार से ही मुक्त हो जाता है।

उत्कृष्ट प्राणी और उत्कृष्टतम प्राणी मे थोडा ही अन्तर है। उत्कृष्ट

प्राणी बाहरी रूप से स्पर्शेन्द्रिय से मित्रता करते है, पर ये बोध अर्थात् ज्ञान और प्रभाव अर्थात् धर्मोपदेश के द्वारा स्पर्शेन्द्रिय के स्वभाव, मूल आदि की खोज करते है, और सब कुछ जान लेने के बाद ये भी स्पर्शेन्द्रिय से विरक्त हो जाते है।

मध्यम प्राणी सशय के झूले मे झूलते हुए समय व्यतीत करते रहते है। कभी उन्हे उत्कृष्ट प्राणियो की बात अच्छी लगती है तो कभी जघन्य प्राणियो की बात सुहाती है। ये पूरी तरह से स्पर्शेन्द्रिय का साथ तो नही छोडते, पर मर्यादा का ध्यान अवश्य रखते है। कालान्तर मे जब ये स्पर्शेन्द्रिय द्वारा जघन्य प्राणियो की दुर्दशा देखते है तो फिर इनका सदेह समाप्त हो जाता है और ये भी उत्कृष्ट मनुष्य बनकर स्पर्शेन्द्रिय से नाता तोड लेते हैं।

जघन्य प्राणी तो पूरी तरह स्पर्शेन्द्रिय के दास होकर जीते है। ये अपनी दुर्दशा देखकर भी यह नहीं जानते कि यह इन्द्रिय हमारी शत्रु है।

इसके बाद राजा शत्रुमर्दन के मन्त्री सुबुद्धि ने आचार्य प्रबोधनरति से पूछा कि चारो प्रकार के मनुष्य कैसे बनते है तो आचार्य बोले कि चार प्रकार के मनुष्यो का स्वरूप स्वाभाविक नही है। इसके पीछे कुछ कारण है।

उत्कृष्टतम प्राणियो ने अपना कार्य सिद्ध कर लिया है और उत्कृष्ट प्राणी अपना कार्य सिद्ध करना चाहते है। ये प्राणी कर्मानुसार बनते हैं। शुभ, अशुभ और सामान्य (शुभाशुभ) तीन प्रकार के कर्म होते है। इन्ही से कर्मो की पद्धति बनती है—शुभ पद्धति, अशुभ पद्धति और सामान्य पद्धति। इस क्रम से कर्मविलास तो तीन प्रकार के मनुष्यो का पिता बनता है और तीनो पद्धतियाँ माता बनती है।

इनमे उत्कृष्टतम प्राणियो का स्वरूप स्थिर है। ये कभी दूसरी स्थिति को प्राप्त नही होते। अन्य प्राणियो का स्वरूप बदलता रहता है, क्योकि ये अपने पिता कर्मविलास के अधीन रहते है। कर्मविलास राजा उत्कृष्ट प्राणियो को मध्यम, मध्यम को उत्कृष्ट और मध्यम को जघन्य बना देता है। अत जो प्राणी कर्मविलास राजा के चगुल से छूट चुके है, उनकी स्थिति एक-सी—कभी न बदलने वाली रहती है।

उत्कृष्टतम प्राणी अपने स्वभाव से स्वत ही बनते है। इस प्रकार के प्राणी बनने का उपाय जिनेश्वरप्रणीत धर्म की भावदीक्षा लेना और उसका निर्वाह करना है।

इस देशना के बाद मनीषी ने विचार किया कि आचार्य ने जो कुछ कहा है, वह सब हम भाइयो पर घटित होता है। हमारे साथ जो स्पर्शन रह रहा है, उसका स्वभाव भी वही है, जो स्पर्शेन्द्रिय का कहा गया है।

स्पर्शन को हम भाइयो ने आत्म-हत्या करने से बचाया था तो उसने भवजन्तु के द्वारा उसे त्यागने की बात कही थी। भवजन्तु उत्कृष्टतम श्रेणी का जीव था। मेरा भाई मध्यमबुद्धि मध्यम कोटि का है। मेरे विचार उत्कृष्ट प्राणियो जैसे ही लग रहे हैं। हमारा छोटा भाई बाल वास्तव मे जघन्य कोटि का प्राणी है।

मध्यमबुद्धि ने मनीषी से पूछा कि भाई तुम क्या सोच रहे हो तो मनीषी ने उसे अपने मन की बात बताई। इस पर मध्यमबुद्धि ने कहा कि मेरा रहा-सहा सशय भी अब तुम्हारे विचारो और आचार्य की देशना से नष्ट हो गया। केवल शरीर-निर्वाह के लिए ही हमे इन्द्रियो का उपयोग करना चाहिए, क्योकि धर्म की साधना शरीर से ही होगी। मैं भी अब तुम्हारी तरह स्पर्शन से मुँह मोड लूँगा।

बाल ने जो कुछ सुना, वह न सुनने जैसा ही था। उसका पूरा ध्यान मदनकन्दली की ओर था। मदनकन्दली अपने पति राजा शत्रुमर्दन के पास बैठी थी। बाल उसके अग-प्रत्यगो को देख-देखकर नाना प्रकार के उपमानो को इकट्ठा कर रहा था। कमल से चरण, कदली-सी जघाएँ आदि के साथ वह उरोज, नेत्र, नासिका के लिए कलश, दाडिम, खजन, मीन, शुक की उपमा जुटा रहा था। वह उसके स्पर्श के लिए मतवाला हो रहा था और यह भूल गया था कि इसके स्पर्श की चाह के कारण ही राजा शत्रुमर्दन ने मेरी पिटाई करवाई थी तथा मुझे फाँसी पर लटका दिया था।

सब अपने-अपने विचारो मे डूबे थे। मनीषी ने उत्कृष्टतम प्राणी बनने का निश्चय किया और मन-ही-मन दीक्षा लेने का भाव दृढ किया। सुबुद्धि मन्त्री और आचार्य प्रबोधनरति की बात सुनकर मध्यमबुद्धि ने भी दीक्षा लेने का निश्चय किया, लेकिन वह यह भी सोचने लगा कि मैं चारित्र का पालन सही ढग से कर भी पाऊगा या नही।

उधर सुबुद्धि के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य प्रबोधनरति बोले कि गृहस्थधर्म धर्मपालन की शक्ति तो उत्पन्न कर सकता है, पर वह प्रत्यक्ष शक्ति उत्पन्न नही कर सकता। गृहस्थ-धर्म मध्यम कोटि के जीवो के लिए है। गृहस्थाश्रम मे रहते-रहते मध्यमकोटि का प्राणी एक दिन

उत्कृष्ट कोटि का प्राणी वन जाता है। प्रत्यक्ष रूप से तो श्रामणी दीक्षा ही सव दु खो को नष्ट करने में पूर्ण समर्थ है। यह सुनने के बाद मध्यमबुद्धि ने सोचा कि मुझे तो अभी गृहस्थ-जीवन मे रहकर ही जिनेश्वरप्रणीत धर्म का चिन्तन-मनन करते रहना चाहिए। ☐

[१७] **बाल की भवितव्यता**

वाल अपलक दृष्टि से मदनकन्दली को देखे जा रहा था। उसके स्पर्श-सुख की कल्पना मे उसे एक-एक क्षण भारी पड रहा था। उसे लगा कि रानी मदनकदली भी मुझ पर अनुरक्त है। यह सोचते ही वह उठकर रानी मदनकदली को आलिगन मे भरने के लिए दौडा, तभी धर्मसभा मे बैठे लोग चिल्लाये—पकडो-पकडो, यह कौन लम्पट है। राजा शत्रुमर्दन चिल्लाया—अरे यह तो वही पापी है, जिसे मैंने फाँसी दी थी। यह वच कैसे गया?

बाल राजा शत्रुमर्दन का तेज नही सह पाया। वह भयभीत होकर भागा और दुर्बल होने के कारण गिर पडा। तभी उसके शरीर से स्पर्शन और अकुशलमाला निकले और धर्मसभा की सीमा से दूर जा बैठे। 'मरे को क्या मारू" यह सोच, दीन जानकर राजा शत्रुमर्दन ने बाल का पीछा छोड दिया और अपनी जगह आ बैठा। फिर उसने आचार्य प्रबोधनरति से पूछा—

"भन्ते! यह वाल इतना अधम प्राणी क्यो है, जिसने धर्मसभा की मर्यादा का भी उल्लघन किया?"

आचार्य वोले—

"राजन्! बाल का दोष नही है। दोषी तो वे दोनो प्राणी है जो दूर बैठे है। इनमे एक बाल की माता अकुशलमाला है और दूसरा स्पर्शन है। ये दोनो ही इससे अनर्थ कराते रहते है। जब बाल उठकर वाहर जायेगा, ये दोनो पुन इसके शरीर मे प्रविष्ट हो जायेगे।"

राजा ने दूसरा प्रश्न किया—

"फिर बाल इन दोनो दुष्टो को अपने शरीर मे क्यो रहने देता है?"

आचार्य बोले—

"राजन् ! बाल यह जानता ही नही है कि स्पर्शन अधम और पापी है। वह यह भी नही जानता कि यह प्राणिमात्र का शत्रु है। वह तो इसे परम मित्र मानता है। इसीलिए उससे प्रीति रखता है।"

"बाल की इस भ्रान्ति का क्या कारण है ?" राजा ने पूछा—"यह बाल शत्रु को मित्र क्यो समझता है ?"

"अपनी माता अकुशलमाला के कारण बाल स्पर्शन जैसे शत्रु को भी मित्र समझता है। अकुशलमाला अपनी योगशक्ति से बाल की देह मे रहती है और वही बाल को बताती रहती है कि स्पर्शन तेरा मीत है। जिसकी माता अकुशलमाला—अशुभ कर्मों की शृंखला होगी, वह तो स्पर्शन शत्रु से प्रीति करेगा ही।"

राजा ने पुन पूछा—

"आप जैसे आचार्य के सामने बाल के मन मे नीच विचार क्यो उत्पन्न हुए ?"

आचार्य बोले—

"राजन् ! कर्म दो प्रकार के होते है—(१) सोपक्रम और (२) निरुपक्रम। सोपक्रम कर्मों का क्षय महापुरुषो के सयोग से होता है। लेकिन निरुपक्रम कर्मों का क्षय महापुरुषो के सयोग से भी नही होता। अत निरुपक्रम कर्मों मे बंधा प्राणी महापुरुषो के सामने भी नही चूकता। ऐसे प्राणी तीर्थंकर के समक्ष भी बुरा आचरण करते हैं। इसीलिए बाल भी बुरा कृत्य करने को उद्यत हुआ था।

"राजन् ! बाल के शरीर मे अकुशलमाला निरुपक्रम कर्म के रूप मे रहती है और वह उसकी माता होने के कारण निकट भी है। अपनी माता की प्रेरणा से ही यह बाल पापी स्पर्शन से प्रेम करता है।"

"भगवन् ! बाल की भवितव्यता के बारे मे भी बताने की कृपा कीजिए।" राजा शत्रुमर्दन ने कहा—"इसका अन्त किस प्रकार होगा ?"

आचार्य प्रबोधनरति बताने लगे—

"राजन् ! इस समय बाल तुम से भयभीत है। जब तुम यहां से चले जाओगे तो यह पुन अकुशलमाला और स्पर्शन के अधीन हो जाएगा। तुम्हारे भय से यह क्षितिप्रतिष्ठित नगर छोड देगा। और घूमते-घूमते यह नाना कष्ट सहता हुआ कोल्लाक सन्निवेश के कूर्मपूरक गांव मे पहुँचेगा।

गाँव के पास दोपहरी मे प्यास से व्याकुल यह जगल मे एक तालाब के निकट पहुँच जाएगा।

"राजन्! उसी समय दोपहर को एक चाण्डाल अपनी चाण्डालिनी के साथ तालाब पर आयेगा। धनुष-बाण लेकर चाण्डाल पेड पर चढकर पक्षियो का वध करने बैठेगा। निपट एकान्त देखकर चाण्डालिनी निर्वस्त्र होकर तालाब मे स्नान करने घुसेगी। तभी बाल तालाब मे घुसेगा। बाल को देखकर चाण्डालिनी पानी मे डुबकी लगाकर कमल के पत्तो मे छिप जाएगी। बाल उसके निकट पहुँचेगा और उसका स्पर्श पाकर कामातुर हो उठेगा। बाल चाण्डालिनी से बलात्कार करेगा। चाण्डालिनी चिल्लायेगी। तभी चाण्डाल बाण चलाकर उसका वध कर देगा और मरकर बाल सीधा नरक को जाएगा। फिर वह अनेक कुयोनियो मे भटकता रहेगा।

[१८] **अप्रमाद यत्र और मनीषी**

बाल का भविष्य जानने के बाद राजा शत्रुमर्दन को स्पर्शन और अकुशलमाला पर बहुत क्रोध आया। उसने अपने मत्री सुबुद्धि को आदेश दिया—

"मत्री! यदि मैं स्पर्शन और अकुशलमाला जैसे शत्रुओ का नाश न करूँ तो मेरा शत्रुमर्दन नाम व्यर्थ ही है। अत मैं तुम्हे आदेश देता हूँ कि इन दोनो को बन्दी बनाकर या तो कोल्हू मे पेल दो या फाँसी दे दो।"

राजाज्ञा सुनने के बाद मत्री सुबुद्धि सोचने लगा कि जब मैं इनका मत्री नियुक्त हुआ था, तभी यह तय हो गया था कि राजा कभी भी हिंसक कार्यो मे मुझसे सहयोग नही लेगा। फिर भी राजा मुझे वध का आदेश दे रहे है। बुझे मन से मत्री सुबुद्धि ने राजा को स्वीकृति दे दी और आचार्य की ओर देखने लगा। मन की बात जानने वाले आचार्य ने राजा शत्रुमर्दन से कहा—

"राजन्! तुम बहिरग जगत के राजा हो और बाहरी शत्रुओ को ही नष्ट कर सकते हो। तुम्हारी फाँसी और कोल्हू मे पेलना अन्तरग शत्रुओ का कुछ भी नहीं बिगाड सकते। अन्तरग शत्रुओ को अन्तरग शस्त्रो से ही नष्ट किया जाता है। स्पर्शन और अकुशलमाला अन्तरग शत्रु है। इन्हे अप्रमाद यत्र से ही मारा जा सकता है।"

यह कह आचार्य प्रबोधनरति अप्रमाद यत्र का स्वरूप समझाने लगे। उन्होने कहा कि मैं तथा मेरे साथ जो श्रमण है, वे सब अप्रमाद यत्र के प्रयोग से ही अपने अन्तरग शत्रुओ को नष्ट करते रहते है। अप्रमाद यत्र के साथ अन्य उपकरण भी हम लोग प्रयोग मे लाते रहते है। कभी किसी को किंचिन्मात्र दुख न देना, सदा सत्य ही बोलना—असत्य भाषण से वचना, बिना दिये तृण तक न लेना, नवगुप्ति युक्त ब्रह्मचर्य का पालन, परिग्रह का सर्वथा त्याग, अनेक प्रकार के अभिग्रह धारण करना, गुरुजनो का मान, वाह्य आपत्ति मे धैर्य, योग सिद्धि का प्रयत्न, आत्मा, शरीर और इन्द्रियो को भिन्न-भिन्न देखना आदि ऐसे अनेक उपकरण है, जिनका प्रयोग हम श्रमण जन अप्रमाद यत्र के साथ प्रयोग करके अपने अन्तरग शत्रुओ को नष्ट करते रहते है।

'शत्रुओ को नष्ट करते रहते है' का अभिप्राय यह है कि थोडा-सा प्रमाद होने से ये शत्रु सिर उठाने लगते है। पूर्णतया नष्ट तो ये सिद्धावस्था मे ही होते है। साधनावस्था मे तो ये कभी नष्ट होते है और कभी पुन जीवित हो जाते है।

राजन् ! अन्तरग शत्रुओ की एक विशेषता और है। वह यह कि किसी एक द्वारा नष्ट किये जाने पर ये सबके लिए नष्ट नही होते। यदि तुम स्पर्शन और अकुशलमाला को अप्रमाद शस्त्र से नष्ट कर दो तो ये तुम्हारे लिए ही नष्ट होगे, पर दूसरे प्रमादी को सताने लगेंगे।

जब आचार्य प्रबोधनरति का वक्तव्य समाप्त हुआ तो मनीषी के मन मे दीक्षा लेने का भाव जाग्रत हुआ। वह श्रमण बनकर अपने अन्तरग शत्रुओ को मिटा देना चाहता था। दीक्षा लेने से पहले वह अपनी शका का समाधान करना चाहता था। अत उसने आचार्य प्रबोधनरति से जिज्ञासा प्रस्तुत की—

"भन्ते ! आपने कहा था कि भागवती दीक्षा लेकर मनुष्य उत्कृष्ट-तम पुरुष बन सकता है और यह भी कहा कि अपनी सामर्थ्य वाले अप्रमाद यत्र के प्रयोग मे भी वह कल्याण कर सकता है। मेरी शका यह है कि भागवती दीक्षा और अप्रमाद यत्र के प्रयोग मे क्या अन्तर है ?"

"केवल नाम का अन्तर है।" आचार्य ने कहा—"दोनो एक दूसरे के पर्याय है। अप्रमाद यत्र ही भागवती दीक्षा है और भागवती दीक्षा ही अप्रमाद यत्र है।"

"फिर तो मुझे भागवती दीक्षा दीजिए।" मनीपी ने कहा—"मैं अपना कल्याण चाहता हूँ।"

- "तेरा मनीपी नामक आज सार्थक हो गया।" आचार्य ने कहा—"तू हर तरह से भागवती दीक्षा के योग्य है।"

मनीपी को भागवती दीक्षा की अनुमति मिल गई। राजा शत्रुमर्दन को मनीपी के वारे मे जानने की जिज्ञासा हुई कि यह कौन भाग्यशाली है, जो घर-बार—सवका त्याग करके साधु बनना चाहता है। उसने आचार्य से ही पूछा—

"भगवन्! भागवती दीक्षा है तो सुन्दर, पर इसकी कठिनता की कल्पना से ही मुझे बुखार चढने लगता है। चाहकर भी मेरा साहस भागवती दीक्षा लेने का नही होता। लेकिन यह मनीषी कौन है जो बडे सहज ढग से दीक्षा लेने को तत्पर हो गया?"

आचार्य प्रवोधनरति ने राजा शत्रुमर्दन को मनीषी का परिचय दिया तो राजा सोचने लगा कि मैंने इसी के भाई पापी बाल को मारने की आज्ञा दी थी, तब मैंने लोगो को इसकी प्रशसा करते सुना था कि एक ही पिता का एक पुत्र मनोपी है, जो कितना गुणवान है और दूसरा यह पापी बाल है, जिसने अपने दुराचरण से सवको दु खी किया है।

मनीषी का परिचय देते समय जब आचार्य ने यह कहा कि क्षितिप्रतिष्ठित नगर के राजा कर्मविलास के तीन पुत्रो मे एक यह मनीषी है तो शत्रुमर्दन को अपने सत्त्व के वारे में शका हुई। उसने पूछा—"भगवन! इस नगर का राजा तो मैं भी हूँ।"

"राजा तो तुम भी हो।" आचार्य वोले—"लेकिन क्षितिप्रतिष्ठित नगर के असली स्वामी राजा कर्मविलास ही है। कर्मविलास राजा की आज्ञा का उल्लघन करने का साहस किसी मे नही है। तुम भी कर्मविलास के अधीनस्थ राजा हो। राजा कर्मविलास जव चाहे तुम्हारा राज्य तुमसे लेकर किसी और को दे सकते हैं। जिसकी आज्ञा उल्लघ्य न हो, वही असली राजा होता है।"

"ऐसा शक्तिशाली राजा मैंने आज तक नही देखा।" शत्रुमर्दन वोला—"कर्मविलास जब इतना शक्तिशाली है तो वह किसी को दिखाई क्यो नही देता?

"चूँकि वह अन्तरग राज्य का राजा है, इसलिए तुम-जैसे व्यक्तियो को दिखाई नही दे सकता।" आचार्य वोले—"अन्तरगलोक के व्यक्ति गुप्त

"प्रकर्ष ! जैसे शान्तिशिव ने वैद्य के कथन का भाव नही समझा था, वैसे ही यदि तूने मेरे कथन का भाव नही समझा, मौन रहकर केवल सुनभर लिया तो भौताचार्य की तरह तू मेरी भी दुर्दशा कर सकता है। अत जो मैं कहूँ उसे सुनने के बाद उसके भाव को भी समझ। भाव को समझने के लिए पूछताछ, प्रश्न या शका करना जरूरी है।"

अब प्रकर्ष बोला—

"मामा ! आपने चित्तवृत्ति अटवी, प्रमत्तता महानदी, तद्विलसित द्वीप, चित्तविक्षेप मण्डप, तृष्णा वेदिका, विपर्यास सिंहासन और अविद्या शरीर से बने मोहराजा का वर्णन किया। इनमे मैं सबका भाव समझ गया हूँ, फिर भी मैं महामोह राजा का स्वरूप सम्यक् प्रकार से नही समझ पाया हूँ। इसे कृपाकर पुन समझाइए।"

इसके बाद विमर्श ने इनके अन्तरग स्वरूप और बाह्य रूप का पुन विवेचन किया। □

[१२] रूपक कथा . वेल्लहल कुमार की

विमर्श ने अपने भानजे प्रकर्ष को प्रमत्तता नदी, तद्विलसित द्वीप, चित्तविक्षेप मण्डप आदि का जो भाव रहस्य पुन समझाया, वही सब विचक्षणाचार्य ने राजा नरवाहन को समझा दिया। उधर ससारी जीव जब अपनी आत्मकथा सुना रहा था तो अगृहीतसकेता ने उससे कहा—

"भाई संसारी जीव ! जो भाव-रहस्य विमर्श ने प्रकर्ष को समझाया, उसका रहस्य मुझे भी समझाइए।"

"इसके लिए मैं तुम्हे एक रूपक कथा सुनाऊँगा।" ससारी जीव ने अगृहीतसकेता से कहा—"दृष्टान्त अथवा रूपक के बिना आध्यात्मिक रहस्य समझ मे नही आता। इसके लिए मैं तुम्हे वेल्लहल कुमार की कथा सुना रहा हूँ।"

× × ×

नयनोदर नाम का एक विशाल नगर था। इस नगर मे अनादि नाम का राजा राज्य करता था। यह राजा इतना शक्तिशाली था कि शेष, महेश, गणेश, दिनेश, विष्णु और ब्रह्मा तक इसके विपरीत नही चल सकते

थे। सस्थिति इस राजा की रानी थी। इस रानी ने जिस पुत्र को जन्म दिया, उसका नाम वेल्लहलकुमार था।

राजपुत्र वेल्लहलकुमार खाने-पीने का इतना अधिक शौकीन था कि रात-दिन कुछ-न-कुछ खाता-पीता रहता था। परिणामस्वरूप उसे अजीर्ण हो गया और वह बीमार रहने लगा। इतने पर भी उसने पथ्य-परहेज का विचार नही किया और बिना विचारे खाता-पीता रहा।

खाने-पीने के शौकीन वेल्लहलकुमार ने एक दिन वनभोज (पिकनिक) या गोठ का आयोजन किया। नौकर-चाकर और इष्ट मित्रो के साथ उसने विविध प्रकार के व्यजन बनवाये। सभी व्यजन सुन्दर थे। वेल्लहलकुमार ने थोडा-थोडा सबमे से चखा।

उपवन में तरह-तरह के मनोरजन हुए। सुन्दरियो के नृत्य हुए। सबने भोजन किया। वेल्लहलकुमार ने पुन सब में से थोडा-थोडा भोजन किया। जगल की ठण्डी हवा और अजीर्ण के कारण कुमार को ज्वर हो गया। उस समय वैद्यपुत्र ममयज्ञ भी वहाँ मौजूद था। उसने कुमार के मस्तक पर हाथ रखकर कहा—

"कुमार! आपको तीव्र ज्वर है। अव आप कुछ भी मत खाना, वरना सन्निपात हो जाएगा और लेने के देने पड जायेगे। आपको उपवास करना ही उचित है।"

वैद्यपुत्र समयज्ञ की परम हितकर बातें वेल्लहलकुमार को अच्छी नही लगी। रोगग्रस्त होने पर भी भोजन देख-देखकर उसकी जीभ से लार गिर रही थी। वैद्यपुत्र समयज्ञ ने कुमार को हाथ पकड कर रोका, पर कुमार नही माना और उसने सभी तरह का भोजन खा लिया। अवरुद्ध आमाशय मे भोजन समाया नही। परिणाम यह हुआ कि वमन हो गई। इससे परोसा हुआ शुद्ध भोजन भी वमन-मिश्रित होकर घृणित और दूषित हो गया।

ऐसी दशा मे कुमार का विपरीत चिन्तन इस प्रकार चलने लगा। उसने सोचा—वमन होने का कारण यह है कि मेरे खाली पेट में हवा भर गई है। यदि मैं अपना पेट भर लू तो फिर क्यो वमन होगी? पहले मैंने सबमे मे थोडा-थोडा ही खाया था। मुझे डटकर खाना चाहिए।

ऐसा दोषपूर्ण चिन्तन करने के बाद वेल्लहलकुमार वमन-मिश्रित भोजन करने लगा। ऐसा करने से पूर्व वैद्यपुत्र समयज्ञ ने उसे चेतावनी देते हुए चिल्ला-चिल्लाकर रोका कि राजकुमार! आपको निश्चय ही सन्निपात हो जायगा।

वेल्लहलकुमार ने वैद्यपुत्र को फटकार दिया और कहा कि तू मूर्ख है। मेरे पेट मे हवा भर गई है। वह भोजन करने से ही दूर होगी।

निर्लज्ज व हठी कुमार माना नही। उसने वमन होने पर भी भोजन किया और उसे सन्निपात हो ही गया, जो होना ही था। वह बमन किये हुए भोजन पर गिरकर छट-पटाने लगा। उसकी दशा वहुत बिगड गई। अब वैद्यपुत्र भी उसे नही बचा सकता था।

ससारी जीव ने कहा—

"अगृहीतसंकेता ! वेल्लहलकुमार की इस कथा में चित्तवृत्ति अटवी के अन्तर्गत नदी, मण्डप, द्वीप, सिहासन जो कुछ था, उस सबका रहस्य आ गया है।"

"लेकिन मेरी समझ में तो केवल कहानी ही आई है।" अगृहीत-सकेता ने ससारी जीव से कहा—"स्पष्ट करके समझाओ।"

ससारी जीव ने प्रज्ञाविशाला से कहा—

"वहन प्रज्ञाविशाला ! वेल्लहलकुमार की कथा का रहस्य तुम तो समझ ही गई हो। अपनी आत्मकथा कहते-कहते मैं कुछ थक गया हूँ। अत मेरी ओर से अगृहीतसकेता को तुम्ही कथा का रहस्य समझा दो।"

अव प्रज्ञाविशाला अगृहीतसकेता को कथा का रहस्य समझाने लगी।

× + ×

इस कथा मे वेल्लहलकुमार कर्मभार से बोझिल ससारी जीव का प्रतीक है। ससारी जीव भुवनोदर नगर (ससार) मे ही पैदा होता है। कर्मवधनयुक्त जीव अनादि काल से अपनी सस्थिति के कारण कर्मप्रवाह मे भटकता रहता है, इसलिए कथा मे वेल्लहलकुमार को अनादि नामक राजा और सस्थिति नामक रानी का पुत्र वताया गया है।

हे अगृहीतसकेता ! ससारी जीव मनुष्यभव मे आकर ही समस्त कर्मो को जीतने की स्थिति मे आता है, इसलिए वेल्लहलकुमार को राजपुत्र वताया गया, क्योकि राजकुमार ही राजा—शासक वनता है।

चित्रवृत्ति अटवी ससारी जीव की मनोवृत्ति समझनी चाहिए। अच्छे-बुरे कर्मो का वध मनुष्य की मनोवृत्ति के कारण ही होता है। चूंकि जीव अपने आत्मस्वरूप को नही पहचानता, इसलिए उसकी मनोवृत्ति (चित्रवृत्ति अटवी) मे महामोह और उसके सेनापति का द्वन्द्व चलता रहता

है। ज्यो ही मनुष्य अपने आत्मस्वरूप को जानता है, महामोह भाग खडा होता है।

वेल्लहलकुमार अनेक प्रकार के भोजनो को बार-वार खाने की इच्छा वाला था, उसी तरह ससारी जीव भी नाना प्रकार के विषय-भोगो की इच्छा करता हुआ, उन्ही मे डूवा रहता है। वेल्लहलकुमार की तरह ससारी जीव को कर्मो का अजीर्ण होता हैं। यह कर्म अशुद्ध और पाप रूप होने के कारण वहुत दारुण है। इस कर्म मे प्रमाद रूपी तद्-विलसित द्वीप है। जैसे—वेल्लहलकुमार रुग्ण होने पर भी भोजन करता गया और उसकी स्थिति बहुत दारुण हो गई, वैसे ही ससारी जीव कर्मो के बध से रुग्ण होते हुए भी विपयो की ओर बढता ही जाता है। ज्वरग्रस्त कुमार को भोजन करने की इच्छा हुई थी, वैसे ही जीव को दु खी रहते हुए भी भोगो की इच्छा वनी रहती है। वेल्लहलकुमार की तरह प्राणी सुख प्राप्त करने की इच्छा से मोह (अज्ञान) वश विपरीत आचरण करके दु ख पाता है। उसे मान, माया, लोभ, क्रोध जितने भी शत्रु है, सभी प्रिय और मित्र लगते है।

"हे अगृहीतसकेता! वेल्लहलकुमार की तरह ससारी जीव का अजीर्ण रोग ही प्रमत्तता नदी है। प्रमत्तता के कारण जीव को द्रव्यसचय, झूठा यश आदि वहुत भले लगते है। अत यह प्रमाद या प्रमत्तता ही चित्तवृत्ति अटवी की महानदी है। जैसे—वेल्लहल ने थोडा-थोडा भोजन सव मे से चखा था, वैसे ही यह जीव नाना प्रकार के विपयो के भोग की कल्पना किया करता है, जैसे—सुन्दरियो से भोग करूँ, धन का सचय करके भवन वनवाऊँ, रथ खरीदूँ, सेवक रखूँ, उद्यान लगवाऊँ आदि-आदि।

वेल्लहलकुमार का थोडा-थोडा सव भोज्य पदार्थो मे से चखना यह महारम्भ से धन प्राप्त होने पर पाँचो इन्द्रियो के रसो का स्वाद लेने के समान है। कुमार नगर से निकलकर वन मे गोठ करने (पिकनिक मनाने) गया, उसका भाव यह है कि ससारी जीव सन्मार्ग से हटकर दुश्चरित्री हो जाता है। यह भोजन सामग्री (विपय साधन) प्रमत्तता नदी के मध्य तद्विलसित द्वीप के समान है।

समयज्ञ वैद्यपुत्र शास्त्र का जानकार है। जैसे—वेल्लहलकुमार ने वैद्यपुत्र की वात पर ध्यान नही दिया, वैसे ही जीव धर्माचार्य की वात नही सुनता, ससारी जीव का यह आचरण महानदी के मध्य द्वीप मे वने चित्तविक्षेप मण्डप के समान है।

इच्छा का बना रहना, तृष्णा वेदिका कहलाता है। इसी तरह भोग पदार्थ प्राप्त होने पर भी पापोदय के कारण जब भोग पदार्थ नष्ट हो जाते है और उन्हे प्राप्त करने के बाह्य प्रयत्न किये जाते है, उस प्रयत्न को विपर्यास सिहासन कहते है।

जगत के समस्त पदार्थ अनित्य, नाशवान और अपवित्र है तथा आत्मसत्ता से सर्वथा भिन्न हैं। लेकिन अनित्य पदार्थो को नित्य समझना, सुखदायक मानना—विपरीत धारणा और मान्यता ही मोह राजा का शरीर—अविद्या या अज्ञान कहलाता है। इन समस्त पदार्थो मे प्रवृत्त कराने वाला तथा इनमे से ही उत्पन्न होने वाला महामोह राजा कहलाता है।

"आपका प्रज्ञाविशाला नाम सर्वथा सार्थक ही है।" अगृहीतसकेता ने कहा—"आपने मुझे बहुत अच्छी तरह समझाया है। अब आप विश्राम करे और ससारी जीव को अपनी आत्मकथा कहने दे।"

ससारी जीव ने अपनी आत्मकथा आगे बढाई।

× × ×

प्रकर्ष ने अपने मामा विमर्श से कहा—

"मामा! आपने मुझे सब कुछ समझाकर बता दिया। भौताचार्य की कथा को हृदयगम करके मैं अब बीच-बीच मे प्रश्न, टिप्पणी, शका आदि के द्वारा कथा के भाव—रहस्य को भी समझूगा। अब आप मुझे महामोह महाराजा के कुटुम्बियो—परिवारी जनो का परिचय दीजिए।"

विमर्श अब महामोह के परिवारीजन– महामूढता, मिथ्यादर्शन, कुदृष्टि, रागकेसरी, द्वेषगजेन्द्र आदि का परिचय देने लगा। □

१३] महामोह के परिजन महामूढता, मिथ्यादर्शन, कुदृष्टि

विमर्श ने प्रकर्ष को बताया कि देखो भैया! राजसिहासन पर जो सुन्दर और मोटी स्त्री बैठी हुई है, इसका नाम महामूढता है। यह पृथ्वीपति महामोह राजा की रानी है। यह कभी भी अपने पति से अलग नही रहती। जैसे पुष्प के साथ गन्ध, सूरज के साथ धूप और चन्द्रमा के साथ चाँदनी अभिन्न रूप से रहती है, वैसे ही महामोह राजा के साथ महामूढता

है, जिनके शरीर पर झुर्रियाँ पड गई है, वे भी काम-विकारो मे ग्रस्त रहते और काम-चर्चा मे रस लेते है। यह सब मिथ्यादर्शन की महिमा के कारण ही है।

अव मैं तुम्हे मिथ्यादर्शन की पत्नी कुदृष्टि का परिचय दे रहा हूँ। यह जो कुदृष्टि है, यह अपने पति के समान ही गुण-स्वभाव वाली है। बाह्य लोक मे असत् मार्ग पर चलने वाले जितने पाखडी दिखाई देते है, वे सब मिथ्यादर्शन की पत्नी कुदृष्टि के कारण ही है। जैन धर्म के अलावा जितने भी धर्म-मार्ग चल रहे है, वे सब मिथ्यादर्शन और कुदृष्टि की ही देन हैं। इन्ही दोनो के कारण लोगो ने भिन्न-भिन्न देव, भिन्न-भिन्न वाद, वेश, कल्प, मोक्ष के स्वरूप, विशुद्धि और वृत्ति की मान्यता को बल दिया है।

भाई प्रकर्ष ! जगत्प्रसिद्ध मिथ्यादर्शन और उसकी प्रिया कुदृष्टि बहिरग प्राणियो में उल्टे, दुखदायी कार्य कराते हुए विलास करते है। □

[१४]

रागकेसरी और द्वेषगजेन्द्र

रागकेसरी और द्वेषगजेन्द्र—दोनो महामोह के पुत्र है। महामोह ने अपना राज्य भार ज्येष्ठ पुत्र रागकेसरी को दे रखा है। फिर भी महामोह समय-समय पर रागकेसरी की सहायता करते रहते है। पिता के सभी गुण पुत्रो मे भी आ गए है। रागकेसरी का गुण यह है कि यह ससार समुद्र मे विद्यमान बाह्य पदार्थो पर बहिरग प्राणियो की अतिशय प्रीति उत्पन्न करने और क्लेशमय पापानुबधी पुण्य से स्वय को क्लेशमय बनाने तथा भविष्य मे भी क्लेश उत्पन्न करने वाले भावो से प्राणी को दृढ स्नेह-बधन मे बाँधकर रखने मे यह पूर्ण समर्थ है।

अव मैं तुम्हे रागकेसरी के तीन मित्रो का परिचय देता हूँ। मच पर रक्तवर्णी और स्निग्ध शरीर वाले तीन पुरुप बैठे है, ये रागकेसरी के घनिष्ठ मित्र हैं। इनमे एक तो अतत्त्वाभिनिवेश नामक पुरुष है। इसे दृष्टिराग भी कहते है। इसकी विशेपता यह है कि भिन्न मत-मतान्तर वालो मे यह दुराग्रह पैदा करता है।

दूसरा पुरुप भवपात है। कुछ इसे स्नेहराग भी कहते है। यह प्राणियो मे धन, स्त्री, पुत्र आदि के प्रति आसक्ति पैदा करता है।

रागकेसरी के तीसरे मित्र का नाम अभिष्वग है। इसे विषयराग या कामराग भी कहते हैं। यह जगत मे उद्दाम लीलाएँ करता है और शब्द,

प्रकर्ष ! मकरध्वज के तीन अनुचर है। इन्हे वेदत्रय कहते है। इनमे पहले अनुचर का नाम पु वेद अथवा पुरुष वेद है। इसकी शक्ति से मनुष्य स्त्रीगमन का पाप करता है।

दूसरा अनुचर स्त्रीवेद है। इस अनुचर के प्रताप से स्त्रियाँ लोकलाज और कुल गौरव का त्याग करती है। मकरध्वज का तीसरा अनुचर नपु सक वेद है। इसकी शक्ति को कौन जान सकता है ? नपु सको की ससार में सर्वत्र निंदा होती है।

मकरध्वज के जगत् विजय कार्य मे इसकी पत्नी रति बहुत सार्थक सेवा-सहयोग करती है। मकरध्वज द्वारा जीते गये पुरुषो में रति भोग को उद्दीप्त करती है। मकरध्वज के वशीभूत प्राणी वस्तुत जब दुख भोगते है तो उसकी पत्नी रति यह आभास कराती है कि हम बडे आनद मे हैं। यह रति ही लोगो को मकरध्वज का दास बनाती है। रति की प्रेरणा से लोग स्त्रियो को वश मे करने (पटाने) के लिए सुन्दर वस्त्र पहनते है। नाना प्रकार के सकेत करते है और अनेक प्रकार से प्रयास करते हैं।

प्रकर्ष ज्यादातर प्राणी मकरध्वज और रति के दास ही होते है। शेरो के दाँत गिनने वाले भी इनके वश मे रहते है। ये वडे मीठे दुष्ट है। कोई-कोई मनीषी ही इनसे दूर रह पाते है।

"मामा ! आपने मकरध्वज का बडा सुन्दर वर्णन किया है।" प्रकर्ष बोला—"मकरध्वज के पास तीन पुरुष और जो दो स्त्रियाँ बैठी है, इनके बारे मे भी कुछ बताइए।"

"इनका भी सक्षिप्त परिचय सुनो।" विमर्श बोला—"ये हास, अरति, भय, शोक और जुगुप्सा है। अब मैं तुम्हे प्रत्येक के बारे में बताऊँगा।' □

[१६] पांच जन हास, अरति, भय, शोक और जुगुप्सा

यह जो श्वेत रग का पुरुष है, यह हास है। अपने स्वभाव से यह बहिरग जगत के लोगो को वाचाल करता है। इसी के प्रभाव से मनुष्य सकारण-अकारण हा-हा ही-ही करके अट्टहास करता है। यह हास्य प्राणियो को कभी-कभी बडा दु खदायी होता है।

हास की एक पत्नी भी है, जिसका नाम तुच्छता है। तुच्छता इसके शरीर मे ही रहती है। गभीर पुरुष हँसने का कारण होने पर भी मन मे ही मुस्कराते हैं, पर तुच्छ मनुष्य तो अकारण ही अट्टहास करते हैं।

प्रकर्ष ! सोलहो बच्चो मे चार बच्चे सबसे बडे दिखाई दे रहे है। ये अनन्तानुबधी वर्ग के बच्चे है। इनके नाम है—क्रोध, मान, माया और लोभ। मिथ्यादर्शन सेनापति इन चारो को अपने बच्चो-जैसा ही मानता है। ये चारो बच्चे अपनी शक्ति के प्रयोग से बाह्य क्षेत्र के लोगो को मिथ्या-दर्शन का भक्त बना देते है।

अब दूसरे चार बच्चो को देखो, जो अप्रत्याख्यानी वर्ग के बच्चे है। ये पहले चारो से कुछ छोटे है। ये बच्चे बाह्य-क्षेत्र के लोगो को पाप में प्रवृत्त कराते है। इन चारो के रहते प्राणी पाप से विरत नही हो पाता। इनमें एक विशेषता यह भी है कि चित्तवृत्ति में इनके रहने पर भी प्राणी तत्त्व-दर्शन स्वीकार कर लेता है। लेकिन वह कोई धर्म-सकल्प या नियम नही ले सकता।

प्रकर्ष ! तीसरे वर्ग के चार बच्चे प्रत्याख्यानी कहलाते है। इनके नाम भी क्रोध, मान, माया और लोभ है। जब तक ये चित्तवृत्ति अटवी में रहते है, प्राणी पाप को पूरी तरह नही छोड सकता। इनके रहने पर भी प्राणी कुछ-न-कुछ धर्म-सकल्प या त्याग का नियम अवश्य ले सकता है, पर पूर्णत निर्वाह नही कर सकता।

शेष चार बच्चे इतने छोटे हैं, जो गर्भपिण्ड से दिखाई दे रहे है। प्रकर्ष ! इन्हे सज्वलन कहते है। इनको सज्वलनीय क्रोध, मान, माया और लोभ कहा जाता है। पाप से विरत साधुओ तक को ये चारो बच्चे चलाय-मान कर देते है। तब वे साधु जन प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होते हैं। मूल वात यह है कि सोलहो बच्चे चार-चार के क्रम से उत्तरोत्तर अपनी दुष्टता में कम हैं। अन्तिम चार की दुष्टता सबसे कम है।

प्रकर्ष ! सोलह बच्चो के गुणो का मैंने सकेतमात्र तुम्हे दिया है। वस्तुत तो इनके गुणो का वर्णन शेष भी नही कर सकते। इन सोलहो मे आठ वालक (अनतानुबधी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और सज्वलन—माया-लोभ से उत्पन्न) रागकेसरी और उसकी पत्नी मूढता के बच्चे है। शेष आठ (क्रोध एव मान से उत्पन्न) द्वेषगजेन्द्र और उसकी पत्नी अविवेकता के पुत्र है।

प्रकर्ष ! इस प्रकार मैंने महामोह राजा के परिवार वालो का वर्णन किया। अब मैं महामोह महाराजा के सामन्त-सरदार-मन्त्री आदि के बारे मे वताऊँगा। ये सब भी दुष्टता और स्वभाव मे महामोह के परिवारी जनो जैसे ही हैं। इनमे विशेष हैं विषयाभिलाष मन्त्री, भोग-तृष्णा तथा अन्य

करना भी मुश्किल है। मोहराजा के परिवारी जन, मत्री आदि जितने भी सहायक हैं, सभी बडे दुष्ट है। ये सब मिलकर प्राणी को इतना निकम्मा कर देते है कि वह अपना उद्धार नही कर पाता।

"प्रकर्ष! मैंने तुम्हे मोहराजा की पत्नी पुत्र, पुत्रवधू, सामत, योद्धा आदि का परिचय बताया। अब उसके मित्र राजाओ का भी सक्षिप्त परिचय देता हूँ।

"प्रकर्ष! ये राजा है—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय। □

१६] महामोह के मित्र राजा

ज्ञानावरण राजा बहुत शक्तिशाली है। यह बाह्य प्रदेश के लोगो को एकदम ज्ञानशून्य कर अन्धा बना देता है। इसका उपनाम मोह है। इस नाम से भी यह जाना जाता है। इसके पाँच साथी और है, जिनके नाम मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन पर्यायज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण है।

दूसरा जो राजा बैठा है, वह चार पुरुष और पाँच स्त्रियो से घिरा हुआ है। इसका नाम दर्शनावरण है। इसके चार साथी पुरुषो के नाम है—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधि-दर्शनावरण और केवल-दर्शनावरण। जो पाँच स्त्रियाँ इसके साथ बैठी है, इनके नाम हैं—निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानर्द्धि। यह राजा भी अपनी शक्ति से ससार को अन्धा बना देते है।

तीसरा राजा वेदनीय है, जो अपने दो साथियो के साथ घिरा बैठा है। इसके एक साथी का नाम साता है और दूसरे को असाता कहते है। साता प्राणियो को आनन्द देता है और असाता सन्ताप देता है।

चार छोटे-बड़े बच्चो से घिरे बैठे राजा का नाम आयुष्य है। इसके साथी चारो बच्चो के नाम—देवायुष्य, मनुष्यायुष्य, तिर्यंचायुष्य और नरकायुष्य हैं। कौन प्राणी किस जन्म मे कितने समय तक रहेगा, इसका निश्चय करना आयुष्य राजा का काम है।

[२२] **भवचक्र नगर मे**

भवचक्र नगर के लोग उद्यानो मे घूमकर ऋतुराज वसन्त का आनद ले रहे थे। कुछ लोग मिल-बैठकर मदिरा और आसव पीकर मस्त हो रहे थे। कुछ लोग स्त्रियो के मुँह में भरी मदिरा को पीकर अपने को धन्य समझ रहे थे। कुछ स्त्रियो का मुख चुम्बन करके मस्त हो रहे थे और कुछ थिरक-थिरक कर नाच रहे थे। मद्य-गोष्ठी को प्रकर्ष ने बडे कौतूहल से देखा। इसी गोष्ठी के निकट तरह-तरह के फूलो से सजा एक मण्डप था और उस मण्डप मे भी मद्य-गोष्ठी हो रही थी। उसे देख प्रकर्ष ने विमर्श से कहा—

"मामा ! देखो, यह गोष्ठी तो पहली गोष्ठी से भी अधिक विलास-रत है।"

"इस भवचक्र नगर मे वसन्त ऋतु में जगह-जगह ऐसी गोष्ठियाँ होती ही रहती हैं। यही समय इस नगर के सौन्दर्य को देखने का समय है।" विमर्श बोला—"प्रकर्ष ! मदिरापान तो यहाँ के लोगो के लिए आम बात है।

"प्रकर्ष ! अभी तो तूने नगर के बाहर का भाग ही देखा है। चलो, अब नगर के भीतर चले।"

विमर्श और प्रकर्ष जब नगर में प्रविष्ट हुए तो उन्होने एक राजा को हाथी पर आते देखा। उसके आगे-पीछे राज्याधिकारी और नागरिक चल रहे थे। सुन्दरियो से घिरा वह राजा कामदेव जैसा लग रहा था। उसके आगे पीछे तरह-तरह के बाजे भी बज रहे थे। प्रकर्ष के पूछने पर विमर्श ने उसे बताया कि ये सब बाह्य प्रदेश में रहने वाले प्राणी है। यह सब महामोह तथा उसके सहयोगी राजाओ का प्रताप है कि ये लोग इतने मस्त और विलासरत है।

प्रकर्ष ने पूछा—मामा ! ये लोग किस राजा के प्रताप और किस घटना के कारण इतने मोदप्रिय है।

विमर्श बताने लगा कि प्रकर्ष ! चित्तवृत्ति अटवी में चित्तविक्षेप मण्डप मे स्थित तृष्णावेदिका पर हमने मकरध्वज राजा को देखा था। यह जो वसन्त है, यह उसी मकरध्वज राजा का प्रिय मित्र है।

देखते ही घृणा होती है। वह पूर्णत त्याज्य है। फिर भी लोग उसे खाते है। मास हिंस्र पशुओ का भोजन है। अत मास खाने वाले मनुष्य, मनुष्य के रूप मे पशु ही हैं। मास के लिए दूसरो के प्राण लेने पडते हैं। हमारे जब छोटा-सा काँटा भी लगता है तो कैसी पीडा होती है और हम दूसरो के प्राण भी ले लेते है। जो लोग यहाँ-वहा—दोनो लोको मे सुख चाहते हैं, उनको तो मास-भक्षण का चिंतन भी नही करना चाहिए।

दृश्य बदला। विवेक पर्वत पर चढे प्रकर्ष ने एक अन्य दृश्य देखा। एक व्यक्ति को कुछ राजपुरुष पकडे हुए है और वे उस व्यक्ति मे मुँह मे तपाया हुआ शीशा डाल रहे है। प्रकर्ष ने विमर्श मे पूछा कि यह क्या मामला है? तो वह बताने लगा—

यहाँ चणकपुर नामक एक नगर है। इसी नगर का यह रहने वाला यह सुमुख नामक सार्थवाह है। सुमुख को झूठी अफवाहे फैलाने, विकथा—दुर्भाषण करने और झूठ बोलकर दूसरो का अनिष्ट करने का बडा शौक है। इसी से इसका नाम दुर्मुख पड गया। प्रकर्ष! एक बात गाँठ बाँध लो कि विकथा कहना अर्थात् दुर्भाषण करना भी भारी पाप है।

चणकपुर के राजा का नाम है तीव्र। तीव्र राजा एक बार अपने शत्रु राजा से युद्ध करने गया। उसके पीछे दुर्मुख ने यह अफवाह फैला दी कि शत्रु राजा बहुत बलवान है। वह हमारे राजा तीव्र को मार कर यहाँ हम लोगो को भी मारेगा। अत समय रहते सब लोग नगर खाली कर दो।

भयभीत नगरवासी नगर खाली करके भाग गये। कालान्तर मे तीव्र राजा शत्रु को जीतकर आया और नगर को सुनसान पाया तो उसको कारण का पता चला कि लोग दुर्मुख के दुर्भाषण से भयभीत होकर भागे हैं। राजा ने अपने दूत इधर-उधर भेजकर भागे हुए लोगो को निर्भय किया और चणकपुर नगर को पुन आबाद किया। लेकिन वह दुर्मुख पर कुपित हो गया। उसने राजसेवको को आज्ञा दी कि इसमे मुँह मे तपाया हुआ शीशा भर दो।

प्रकर्ष! तीव्र राजा के सेवक दुर्मुख को दुर्भाषण—विकथा का यह असह्य दण्ड दे रहे हैं कि शीशा पिघला कर इसके मुँह मे भर रहे हैं।

प्रकर्ष! यह वाणी हमे सत्य बोलने के लिए ही मिली है। सत्य से ही सबका कल्याण होता है। सभी सन्त कहते हैं कि सत्य से बडा कोई तप

नही है और झूठ से बडा कोई पाप नही है। कभी-न-कभी दुर्भाषी की दुर्दशा अवश्य होती है।

"यहाँ से तो सब कुछ स्पष्ट दीख रहा है।" प्रकर्ष ने कहा—"मामा! यह तो आपने बहुत ही अच्छा किया, जो यहाँ विवेक पर्वत पर आ गए।"

इसके बाद प्रकर्ष ने दो व्यक्तियो को जाते देखा तो विमर्श से पूछा कि मामा! ये दोनो कौन हैं? विमर्श ने बताया—

"प्रकर्ष! बाह्य लोगो की जो भी लीलाएँ होती है, वे अन्तरग पुरुषो की ही लीलाएँ होती है। दीखने में ऐसा लगता अवश्य है कि अमुक व्यक्ति रो रहा है और अमुक प्रसन्न हो रहा है। पर यह कार्य अन्तरग पुरुष ही करते है।

"प्रकर्ष! ये जो दो पुरुष जा रहे है, ये दोनो अन्तरग पुरुष है। इनमे से एक का नाम हर्ष और दूसरे का नाम विषाद है। हर्ष रागकेसरी का खास आदमी है और विषाद शोक का परम मित्र है। हर्ष और विषाद एक ही व्यक्ति मे बारी-बारी से प्रवेश करके अपना कमाल दिखायेंगे। अब तुम इनका कमाल देखो।"

थोडी ही देर बाद दृश्य बदला। एक बडा भव्य भवन सामने था। उसमे एक सेठ बैठा था। उस सेठ का नाम वासव था। वासव सेठ की धनदत्त नामक सेठ से बचपन से ही मित्रता थी। बहुत दिनो बाद धनदत्त वासव के घर आया तभी हर्ष ने वासव के शरीर मे प्रवेश किया। अब तो वासव हर्ष से खिल उठा। वह धनदत्त से लिपट गया। हर्ष से पुलकित होकर वासव सेठ ने अपने कुटुम्बी जनो, मित्रो, स्वजनो को इकट्ठा किया और अपने बचपन के मित्र के आने के हर्ष में एक दावत दे डाली। बाजे बजवाये। आमोद-प्रमोद के साधन जुटाये।

थोडी ही देर बाद भयकर आकृति वाले विषाद नामक अन्तरग पुरुष ने वासव सेठ के घर मे प्रवेश किया। तभी बाहर से एक अन्य व्यक्ति आया। उसने सेठ के कान में कुछ कहा ही था कि मौका देखकर विषाद उसकी देह में पैठ गया। अब तो सेठ विषाद के वशीभूत होकर 'हा पुत्र! हाय मेरे कुलदीपक!' कहकर रोने लगा। विषाद घर के अन्य लोगो की देह मे भी पैठा। सब रोने लगे। कुछ देर पहले जो आनन्द का सागर हिलोरे मार रहा था वह विषाद के दावानल मे बदल गया।

प्रकर्ष ने पूछा—

"मामा ! मैंने हर्ष का नाटक भी देखा। अब विषाद का भी देख रहा हूँ। लेकिन इस विषाद के पीछे कारण क्या है ?"

"असली कारण तो अज्ञान ही है।" विमर्श बोला—"हर जीव अपने कर्मों से दुःख पाता है। पर हम अज्ञानवश दुखी व्यक्ति को अपना मानकर विषाद के वशीभूत हो जाते हैं। अज्ञान के कारण ही हम हर्षित होते हैं। फिर भी मैं तुम्हे वासव सेठ के विषाद का निमित्त कारण बता रहा हूँ।"

वासव सेठ के वर्धन नामक इकलौता पुत्र है। वह विदेश मे व्यापार करने गया था। उसने काफी धन कमाया। जब वह साथ लेकर चला तो रास्ते मे उसे डाकुओ ने लूट लिया और खूब पिटाई की। अब डाकू वर्धन को अपनी पल्ली—बस्ती मे ले गये है और उसे मारणान्तक पीडा दे रहे हैं।

वासव सेठ का लुम्बनक नामक स्वामिभक्त सेवक भी वर्धन के साथ था। वह किसी तरह यहाँ भाग आया। उसी लुम्बनक ने वासव सेठ को इसके पुत्र वर्धन की दुर्दशा की सूचना यहाँ आकर दी है। इस उपयुक्त अवसर को देख विषाद ने सब पर अपना प्रभाव दिखाया है।

"सेठ के रोने-चिल्लाने से क्या वर्धन बच जाएगा ?" प्रकर्ष ने पूछा—"वर्धन का क्या होगा ?"

'किसी के रोने-धोने से कुछ नही होता।" विमर्श ने बताया—"सब कुछ अपने कर्मों के परिणामस्वरूप ही होता है।

"प्रकर्ष ! इस बात को भवचक्र के लोग जानते भी है कि हमारे करने से कुछ नही होता, फिर भी ये लोग हर्ष-विषाद के वश मे हो जाते हैं। वासव सेठ के घर मे तूने हर्ष-विषाद के नाटक एक साथ देखे। ऐसे नाटक भवचक्र में होते ही रहते है। ये दोनो इतने प्रभावशाली हैं कि अकारण को कारण बनाकर लोगो के सोचने-विचारने की शक्ति नष्ट कर देते है और लोग अकारण ही कभी हर्षित और कभी विषाद मे डूब जाते हैं।

"हर्ष-विषाद के शासन से निकलने के विषय मे कुछ ही लोग सोचते हैं और जितने लोग सोचते हैं, उनमे से कुछ ही इनसे बचने का प्रयत्न करते है। ज्यादातर तो इन्ही के वशीभूत रहते हैं।

"प्रकर्ष ! भवचक्र नगर की लीलाओ का तो कोई अन्त नही। अतः तू कहाँ तक देखेगा ? अब मैं तुझे कुछ विशेष बाते बिना दिखाये, वर्णन द्वारा सुना रहा हूँ। पहले तू इस भवचक्र नगर के चार उपनगरो का हाल सुन ले। इससे तुझे भवचक्र नगर के बारे मे काफी जानकारी हो जाएगी।" □

[२८] **चार उपनगर**

भवचक्र नगर के चारो उपनगरो का पूरा वर्णन करना असम्भव-जैसा कार्य है, फिर भी सक्षेप मे इनके रूप-स्वरूप का सकेत मात्र दिया जा सकता है। ये चारो नगर चार होकर भी ऐसे एक है कि चारो नगरो के प्राणी एक ही भवचक्र नगर मे रहते हुए दिखाई देते है। ऊपर से ये चारो उपनगर भिन्न-भिन्न है, पर अन्दर से मिले हुए लगते है, पर वस्तुत है अलग-अलग।

भवचक्र नगर के ये चार उपनगर इस प्रकार है—(१) मानवावास, (२) विबुधालय, (३) पशु-सस्थान, और (४) पापीपिजर।

प्रथम उपनगर **मानवावास** है, जो महामोह, रागकेसरी, द्वेपगजेन्द्र आदि अन्तरग प्राणियो से व्याप्त है। इस उपनगर मे हर समय द्वन्द्व की धमा चौकडी मची रहती है। कही हर्ष है तो कही शोक, कही जन्म का उत्सव है तो कही मरण का विलाप, कही धन-नाश का दुःख है तो कही धन-प्राप्ति का आनन्द। इस तरह यहाँ परस्पर विपरीत घटनाएँ घटती ही रहती हैं।

दूसरा उपनगर **विबुधालय** है। जितने भी भौतिक और स्थूल सुखो, भोगो की कल्पना की जा सकती है, वे सब विबुधालय के निवासियो को प्राप्त होते है। यहाँ के लोग मानवावास के लोगो के मुकाबले बहुत सुखी हैं, क्योकि इन्हे किसी वस्तु का अभाव नही होता। लेकिन मोहादि अन्तरग शत्रु इन्हे भी प्रताडित करते रहते हैं। ईर्ष्या, द्वेष, राग आदि भीतर के द्वन्द्वो से यहाँ के निवासियो का भी पीछा नही छूटता। लेकिन जो लोग इन्द्रियो के सुख को ही सुख मानते है, उनके लिए विबुधालय मे रहना वरदान सिद्ध होता है।

तीसरा उपनगर **पशु-सस्थान** है। इस उपनगर के प्राणी पीडित और दुःखी रहते है, इन्हे तृण-घास का भोजन मिलता है, यह भी कभी मिलता है तो कभी नही मिलता। प्यास लगने पर कभी-कभी पानी भी नही मिलता। इनकी भूख-प्यास की तृप्ति दूसरो पर निर्भर है। इस उपनगर के प्राणी पूर्णत पराधीन होते है। इन्हे बोझा ढोना पडता है, सवारियाँ खीचनी पडती है और मार भी खानी पडती है। कभी-कभी तो इन्हे बड़ी निर्दयता से पीटा जाता है।

(३) मृत्यु, (४) खलता या दुष्टता, (५) कुरूपता, (६) दरिद्रता, और (७) दुर्भगता या दुर्भाग्य।

पहली पिशाचिनी जरा है। महारानी कालपरिणति ने इसे भवचक्र मे हमेशा के लिये भेज दिया है। यह प्राणी को कुरूप, दुर्बल और श्रीहीन कर देती है। इसके बाह्य कारण अतिमैथुन, अतिभोजन, असयम आदि भी बताये जाते है, पर मुख्य कारण कालपरिणति की व्यवस्था ही है।

यौवन जरा का विरोधी है। यह भी कालपरिणति द्वारा नियुक्त है। यह बल-वीर्य का वर्द्धक, सुन्दर, स्वस्थ बनाने वाला और उछल-कूद वाला बनाता है। लेकिन अन्त मे जरा इसको जीत लेती है। यौवन आकर चला जाता है, पर जरा जब आती है तो जाने का नाम नही लेती और मृत्यु के साथ ही जाती है।

दूसरी पिशाचिनी रुजा है। इसे बीमारी या व्याधि भी कहते है। चित्तवृत्ति अटवी मे बैठे जिन सात राजाओ का वर्णन मैंने किया था, उनमे एक वेदनीय भी था। वेदनीय के साथ उसका मित्र असाता भी था। असाता ही व्याधि को यहाँ भेजता है। दोषपूर्ण आहार-विहार, कुपथ्य-सेवन आदि इसके बाह्य कारण भी माने जाते है। लेकिन मूल कारण असाता ही है।

रुजा का विरोध करने वाली एक भली स्त्री नीरोगता है। नीरोगता होने पर जराकाल मे भी यौवन की अनुभूति होती है। बल, शक्ति और स्फूर्ति आदि के साथ नीरोगता सौन्दर्य को बढाती है। लेकिन ऐसी स्थिति कम लोगो की होती है। ज्यादातर लोगो पर व्याधियाँ—रुजता हावी रहती है। साता ने नीरोगता को भवचक्र मे भेजा है।

चौथी पिशाचिनी मृत्यु है। आयु नामक राजा इसे भवचक्र मे भेजता है। राजा-रक, साधु-गृहस्थ, चक्रवर्ती, देव-दानव, युवा-वृद्ध, स्त्री-पुरुष—सभी इसकी अनिवार्यता से भयभीत रहते है। जरा, व्याधि, पानी मे डूबना, आत्महत्या, पहाड से गिरना, ठोकर खाना आदि अनेको बाह्य कारण मृत्यु के माने जाते है, किन्तु मूल कारण आयु राजा का निर्देश ही है।

आयु राजा के जीविका नाम एक स्त्री और है। यह लोगो को प्रसन्न रखती है। जीविका जीने का आनन्द प्रदान करती है। यह मृत्यु को भुलाये रखती है। पर जीवन के आनन्द मे डूबे प्राणी का मृत्यु बडी निर्ममता से अन्त करती है।

चौथी पिशाचिनी **खलता** या **दुष्टता** है। कर्मपरिणाम राजा के दो सेनापति हैं—एक पापोदय, दूसरा पुण्योदय। पापोदय खलता को भवचक्र नगर मे भेजता है। कुसगति से भी खलता मे वृद्धि होती है, पर यह वाह्य कारण कहने भर को है। मूल कारण पापोदय ही है। खलता से मनुष्य तरह-तरह के पापकर्म करके पापो का पु ज एकत्र कर लेता है।

खलता के विपरीत **सज्जनता** या **सौजन्य** को भेजने वाला पुण्योदय है। सौजन्य के कारण मनुष्य देवतुल्य भला आदमी बनकर पुण्यो, सद्भाग्य और यश का अर्जन करता है।

पाँचवी पिशाचिनी **कुरूपता** है। चित्तविक्षेप मण्डप मे बयालीस अनुचरो से घिरा हुआ 'नाम' नामक एक राजा बैठा तुमने देखा था। 'नाम' राजा ने ही कुरूपता को भवचक्र नगर मे भेजा है। कुरूपता के यद्यपि कुछ वाह्य कारण भी कहे जाते है पर मूल कारण नाम राजा ही है। लगडापन, काना होना, ठिगना, लम्बा, मोटा, पतला, बेडौल, चेचक के दाग आदि कुरूपता के कारण होते है।

नाम राजा ही अपनी दूसरी स्त्री **सुरूपता** को भवचक्र में भेजता है। सुरूपता प्राणी को सुन्दर और आकर्षक बनाती है। इसके कारण पुरुष देव-कुमार और स्त्री देवकन्या लगती है। पर कुरूपता का प्रभाव प्राणियो पर अधिक रहता है। दुर्घटना, बीमारी आदि के बहाने कुरूपता सुरूपता पर हावी हो जाती है।

छठी पिशाचिनी **दरिद्रता** है। जो पापोदय दुष्टता या खलता को भेजता है, वही दरिद्रता को भेजता है। पापोदय इसे अन्तराय राजा की मार्फत भेजता है। इसके कारण प्राणी दीन-हीन, मलिन, अभावग्रस्त, साधनहीन, फटे हाल, अपमानित, तिरस्कृत और अत्यन्त दुखी रहता है।

दरिद्रता की विरोधिनी **सम्पन्नता, समृद्धि** या **ऐश्वर्य** है। इसे पुण्योदय भेजता है। इससे मनुष्य साधन सम्पन्न, रत्नाभूषणो वाला, समाज मे प्रतिष्ठा प्राप्त और यश वाला बनता है। लेकिन ज्यो ही पाप उदय मे आता है, दरिद्रता पिशाचिनी ऐश्वर्य का नाश कर उसे अपने चगुल मे कस लेती है। दरिद्रता के कुछ वाह्य कारण भी कहे जाते हैं, जैसे आलसी, निरुद्यमी आदि। पर मूल कारण पापोदय और अन्तराय ही है। दान न देने से भी दरिद्रता आती है।

सातवी पिशाचिनी **दुर्भगता** या **दुर्भाग्य** है। कर्मपरिणाम राजा जब

है। लेकिन बाह्य कारण भी अन्तरग कारणों से प्रेरित, अर्थात् निमित्तमात्र होते है। मूल कारण कर्मपरिणाम राजा, कर्मपरिणति रानी और उनके नौकर असाता, साता, आयु, नाम, पापोदय आदि ही होते है। भवितव्यता, लोकस्थिति और स्वभाव आदि पाच उनके मुख्य हेतु है। कर्मपरिणाम, काल परिणति, भवितव्यता, लोकस्थिति और स्वभाव—जब ये पाचो निर्णय कर लेते है तो इनके विरुद्ध पलक झपकने जैसा तुच्छतम कार्य भी नही टाला जा सकता।

सिद्धान्तत तो सातो पिशाचिनो से बचने का पुरुषार्थ व्यर्थ है। पर व्यवहारत यदि पुरुषार्थ नही किया जाएगा तो मनुष्य निर्वीर्य, आलसी, निरुद्यमी बनकर और भी दुखी रहेगा। प्रयत्न मे आशा का सम्बल मिलता है। आशा के सहारे दुर्दिनो की लम्बी अवधि भी पार की जा सकती है।

प्रयास करने से मनुष्य पाप से पुण्य की ओर अग्रसर होता है। उसके सस्कार शुभ बनते है और वह सोचता है कि मैं भविष्य मे पाप नहीं करूँगा। यदि शुभ प्रयत्न करने पर भी अच्छा फल नही मिलता तो व्यक्ति को पछतावा नही रहता। अत सद्प्रयत्न से मनुष्य पछतावे के दु ख से बच जाता है। वैसे यह सोचना व्यर्थ है कि मैं ऐसा कर लेता तो इस कुफल से बच जाता। सचित पाप उदय मे आयेगा तो कुफल के भोग से कौन बच सकता है। पर प्रयास-प्रयत्न से भोगकाल मे समता आती है।

"आपकी बात मेरी समझ मे आ गई।" प्रकर्ष ने कहा—"क्या कोई ऐसा स्थान भी है, जहाँ जरा आदि पिशाचिने प्रभावहीन रहती है?"

"है!" विमर्श ने कहा—"निवृत्ति नगरी ऐसा स्थान है, जहाँ मोह का आधिपत्य नही है और वहाँ इन पिशाचिनो की भी पहुँच नही है।

"एक बार जो प्राणी निवृत्ति नगरी मे पहुँच जाता है, फिर वह अविनाशी हो जाता है। वहाँ जरा-मृत्यु कुछ भी नही व्यापता, वहाँ आनद ही आनद है।

"जो प्राणी इस नगरी मे जाना चाहता है, उसे तत्त्वबोध (सम्यक्ज्ञान) प्राप्त करना चाहिए और शुद्ध श्रद्धा (सम्यग्दर्शन) रखनी चाहिए।

"भवचक्र नगर के चारो उपनगर सातो पिशाचिनो से पीडित हैं। इनसे बचने के लिए निवृत्ति नगरी जाने का शुभ सकल्प करना चाहिए।

"प्रकर्ष! यद्यपि यह भवचक्र नगर दुखो का भण्डार है, फिर भी यहाँ के लोगो को प्राय इस नगर से निर्वेद नही होता। महामोह सबको बडी प्रबलता से अपने वश मे रखता है। अत जानकर भी यहाँ के लोग

कोल्हू के बैल की तरह भवचक्र मे घूमते रहना ही पसद करते है। परायो को अपना मानने मे उन्हे विशेष आनन्द आता है। महामोह की गोद में पडे रहकर ये लोग बार-बार जन्म लेने और बार-बार मरने तथा सातो पिशाचिनो से पीड़ित रहने का वध जान-बूझकर करते हैं।"

"ऐसे मूर्ख लोगो की चर्चा मे ज्यादा समय बिताने से क्या लाभ ?" बुद्धि के पुत्र प्रकर्ष ने कहा—"मामा ! हमारे सोचने से क्या होगा ? भवचक्र के प्राणी यदि निवृत्ति नगरी जाने की सोचेंगे भी नही तो दु खी होते ही रहेंगे।" □

[३१] छह अवान्तर मण्डल : षट्दर्शन

रसना की मूल उत्पत्ति का पता लगाने निकले प्रकर्ष और विमर्श ने अन्तरग और बाह्य नगरो के कुतूहल देखे। राजसचित्त, तामसचित्त, चित्तवृत्ति अटवी, भवचक्र नगर आदि के देखने के बाद बुद्धि के पुत्र प्रकर्ष ने कुछ निर्णय निकाले। लेकिन कई वातो को लेकर उसमें उलझन बढ गई। उसका मामा विमर्श तत्त्वदर्शी था, वह विचारपूर्वक सही वात जान लेता था। अत प्रकर्ष ने विमर्श से चलते-चलते पूछा—

"मामा ! अव हमे जल्दी घर लौटना है। चलते-चलते मुझे कुछ बाते और वताये। आपने पहले वताया था कि मिथ्यादर्शन और इसकी पत्नी कुदृष्टि वहुत भयकर एव शक्तिशाली है। कृपया, पुन यह वताइए कि आखिर मिथ्यादर्शन दम्पती के गुण, स्वभाव क्या है कि भवचक्र के लोग उनके वश मे होकर दु ख उठाते रहते है और निवृत्ति नगरी मे जाने का सकल्प नही करते।"

अव विमर्श ने धाराप्रवाह कहना शुरू किया।

भवचक्र नगर के अधिकाश निवासी मिथ्यादर्शन के वशीभूत रहते हैं लेकिन इसके वश मे रहने वाले प्राणी अधिकतर कहाँ रहते हैं, क्यो रहते है और कैसे रहते हैं, इसके वारे मे तुम्हे मैं बताता हूँ।

मानवावास उपनगर में छह अवान्तर मण्डल तुम देख ही रहे हो। ये इस उपनगर के मुहल्ले है। इन मुहल्लो या मण्डलो के अधिकतर निवासी (सभी नही) मिथ्यादर्शन के वश मे रहते हैं।

प्रकर्ष ! मानवावास उपनगर के छहो मुहल्ले या मण्डल इस प्रकार हैं—

प्रथम नैयायिकपुर है। इसके निवासी नैयायिक कहलाते हैं। दूसरा मण्डल वैशेषिकपुर, इसके निवासी वैशेषिक, तीसरा साख्यपुर, निवासी साख्य, चौथा बौद्धपुर, निवासी बौद्ध, पाँचवाँ मीमांसक, निवासी मीमांसक, और छठा मण्डल लोकायतनिवास या चार्वाक मण्डल है। इसके निवासी नास्तिक या बार्हस्पत्य कहलाते है। इन मुहल्लो या मण्डलो के निवासियो पर मिथ्यादर्शन और कुदृष्टि का शासन चलता है। इनमे मीमासक के अतिरिक्त सभी मण्डल दर्शन कहे जाते हैं।

प्रकर्ष ! हम दोनो जिस श्रेष्ठतम पर्वत विवेक पर्वत पर खडे हैं, इसके सामने अप्रमत्तत्व नामक श्रेष्ठतम चोटी है। इस चोटी पर छठा लोकोत्तर नगर जैनपुर बसा हुआ है।

जैनपुर नगर में ही ऐसे प्राणी रहते हैं, जिन पर मिथ्यादर्शन और कुदृष्टि का जोर नही चल पाता।

जैनदर्शनपुर के निवासियो पर मिथ्यादर्शन का जोर क्यो नही चलता, यह भी विचारणीय है। इस लोक मे निवृत्ति नगर नामक जो नगर है, इसमे रहने वालो पर महामोह आदि का कोई प्रभाव नही है। इस नगर मे द्वन्द्व रहित आनन्द का साम्राज्य है। यहाँ कोई उपद्रव नही कर सकता। नास्तिक लोगो के अलावा सभी मण्डलो या दर्शनो के लोग इस निवृत्तिनगर मे पहुँचना तो चाहते हैं, पर सही मार्ग न जानने के कारण भटकने रहते है। इन लोगो ने अपनी-अपनी कल्पना से भ्रान्त मार्गो की सृष्टि करली है। लेकिन जैनपुर वालो ने खोज करके निवृत्ति नगर जाने का सही मार्ग पा लिया है। मिथ्यादर्शन के प्रभाव के कारण अन्य दर्शनो के लोग जैनपुर वासियो वाला सही मार्ग जानने की कोशिश ही नही करते।

जैनदर्शनपुर अनादि और अनन्त है। यह सर्वकाल और शाश्वत है। जबकि मिथ्यादर्शन ने अनेक पुर बसाये और बिगाडे।

इसके बाद विमर्श ने सभी दर्शनो की कल्पना वाले निवृत्ति नगर को जाने वाले उनके भ्रान्त मार्गो का विस्तार से वर्णन किया। उसके बाद बताया कि इनके मार्ग कभी भी निवृत्ति नगर को नही ले जा सकते। □

[३२]

जैनदर्शनपुर की ओर

जैनदर्शनपुर की ओर जाते हुए विमर्श और प्रकर्ष को मार्ग मे कुछ

साधु मिले। विमर्श ने बताया कि ये साधु निवृत्ति नगर के पथिक है। इन्होने मोहादि राजाओ को जीत लिया है। चित्तवृत्ति अटवी मे मोह के साथ जो-जो राजा, सुभट, मन्त्री आदि हमने देखे थे, वे सब इनसे हार चुके है। वहाँ जो सात राजा थे, उनमे से ज्ञानावरणीय आदि तीन को तो इन्होने नष्ट ही कर दिया है और वेदनीय, आयुष्य, नाम-गोत्र—चार को अनुकूल बना लिया है।

इसके बाद विमर्श ने प्रकर्ष को चित्तसमाधान मण्डप दिखाया। मामा-भानजे दोनो उस विशाल मण्डप मे प्रविष्ट हो गए। यहाँ इन्होने एक चतुरानन—चार मुख वाले राजा के दर्शन किये। इसके आस-पास सत्-चित-आनन्द देने वाले अन्य राजा भी बैठे थे।

यह जो 'चित्तसमाधान मण्डप' है, यह भी चित्तवृत्ति अटवी मे ही स्थित है। यहाँ एक 'सात्त्विकमानसपुर' नामक नगर है। इस नगर में ही विवेक पर्वत है। चूँकि सात्त्विक मानसपुर भवचक्र मे है और उसी मे विवेक पर्वत है, इसीलिए जैनपुर भी भवचक्र में माना जाता है।

जैनपुर नगर यद्यपि दोषो से पूर्ण भवचक्र में बसा हुआ है, फिर भी यह दोषमुक्त है। इस नगर के निवासी गुणो का अर्जन करने मे ही लगे रहते है।

सात्त्विकमानसपुर अथवा जैनपुर मे जो लोग रहते है, ये विबुधालय में जाते है और इनकी दृष्टि सदा विवेक पर्वत पर ही टिकी रहती है। विवेक पर्वत पर चढने के कारण ये दोषो से बचे रहते है। इस पर्वत की यह विशेषता है कि भवचक्र का प्राणी एक बार इस पर चढ जाए तो फिर वह कभी दोषोन्मुख नही होता।

इस पर्वत पर अप्रमत्तत्व नामक जो शिखर है। यह भी सब दोषो को नष्ट करने वाला है।

इस प्रकार विमर्श ने प्रकर्ण को जैनदर्शनपुर के सभी रूपो का वर्णन विस्तार से सुना दिया और जैनपुर निवासियो का रहन-सहन, आचार-विचार, स्वभाव-सस्कार, गुण आदि बताया। सब कुछ सुनने के बाद प्रकर्ण ने प्रश्न किया—

"मामा! मैं कैसे मान लू कि जैनपुरवासी दोषो से मुक्त हैं? जैसे मिथ्यादर्शन से प्रभावित अन्य प्राणी मोहादि के वश मे रहते हैं और मूर्च्छा, आनन्द, प्रेम, हर्ष, शोक, रोष, अहकार, हास्य, उद्वेग, निन्दा, तिरस्कार,

प्रशसा आदि परस्पर विरोधी भावो मे उद्वेलित रहते हैं, उसी प्रकार जैन-पुर के निवासी भी रहते है ।

"मामा ! ये लोग साधुओ से प्रेम करते हैं, उनकी श्रद्धा करते हैं। धर्म मे इनकी प्रवृत्ति और आसक्ति रहती है। ज्ञान पाकर हर्ष मनाते हैं, दोषो मे द्वेष करते हैं। शास्त्र विरोधी पर रोष भी करते है। कर्मो की निर्जरा पर गर्व करते हैं। तो वे सब बातें तो इनमे भी हुई, जो मिथ्यावादियो मे होती हैं ?"

प्रकर्ष के प्रश्न का उत्तर देते हुए विमर्श ने कहा—

"प्रकर्ष ! जैन लोगो पर भी मोह का प्रभाव है। पर जैसे एक नाम के दो व्यक्ति होते है, वैसे ही मोह भी दो है। चित्तवृत्ति अटवी मे हमने महामूढता का पति जो महामोह देखा था, वह जैनपुर वाले मोह से भिन्न था ।

"यहाँ का मोह जैन जनो का पतन नही, उत्थान चाहता है। इसका नाम प्रशस्तमोह है और उसका नाम अप्रशस्तमोह है। यह प्रशस्तमोह ऊँचा उठाने वाली वस्तुओ से प्रेम और नीचा गिराने वाली से द्वेष कराता है।"

इसके बाद विमर्श ने प्रकर्ष को चित्तसमाधान मण्डप मे नि स्पृहता नामक वेदी जीववीर्य सिंहासन आदि दिखाकर उनकी विशेषताएँ विस्तार से बताई ।

नि स्पृहता वेदी को जो लोग बार-बार याद करते है, उन्हे भोगो में रस आना बन्द हो जाता है। जीववीर्य सिंहासन के राजा चार मुख वाले होते हैं और ये जैनपुरवासियो का सदा ही हित करते है।

सब कुछ देखने-सुनने के बाद प्रकर्ष ने यह निष्कर्ष निकाला कि सात्त्विकमानसपुर के निवासी विशुद्ध ज्ञानसहित सात्त्विक मन के कारण विबुधालय मे जाते है। जैनधर्म के सिद्धान्तो को जाने बिना भी मात्र कर्म निर्जरा से मानव को ऐसी बुद्धि उत्पन्न हो जाती है वह स्वय को स्त्री पुत्र, धन, मकान, शरीर आदि से भिन्न समझने लगता है। वह महामोहादि के बारे मे जान जाता है कि ये मेरे घोर शत्रु हैं। ऐसी बुद्धि होने को ही विवेक का जागरण या विवेक पर्वत पर चढना कहते है। ऐसे विवेक जाग्रत प्राणियों मे अप्रमाद आता है, जो अप्रमत्तत्व शिखर है। उसके बाद इस शिखर पर बसे जैनपुर मे ये प्राणी चले जाते है। यहाँ श्रावक-श्राविका, श्रमण-श्रमणी चार सघ होते हैं। फिर इन चारो सघो के रूप मे जैनपुरवासी धर्म को जान जाते

है। इस सबका सार रूप चित्तसमाधान मण्डप ही है। फिर निःस्पृहता वेदी और जीववीर्य सिंहासन आदि यहाँ है, जो बड़े कल्याणकारी है।

इतना चिंतन करने के बाद प्रकर्ष ने सोचा कि अब मुझे चित्तसमाधान मण्डप मे विराजमान चार मुख वाले राजा और उसके परिवार वालो के बारे मे जान लेना चाहिए। यह सोच उसने विमर्श से पूछा—

"मामा! चार मुँह वाले राजा के बारे मे भी मुझे बताइए कि यह कौन है। इसके सहायक राजा कौन है तथा इसके कुटुम्बीजन कौन-कौन है, यह भी बता दीजिए।"

विमर्श ने आगे का वर्णन शुरू किया। ☐

[३३] चतुरानन राजा—चारित्रधर्म

चित्तसमाधान मण्डप मे बैठा चार मुख वाला जो राजा है, इसका नाम महाराज चारित्रधर्म है। यह राजा अनन्त, अमित और अपरिमित शक्ति का भण्डार है। इसकी शक्ति का वर्णन साक्षात् शारदा भी नही कर सकती।

इस राजा के जो चार मुख है, इनके नाम—(१) दानमुख, (२) शीलमुख, (३) तपमुख और (४) भावमुख है।

अपने पहले मुख—दानमुख से चारित्रधर्म राजा दान की महत्ता बताकर जैनपुरवासियो को कल्याण की ओर ले जाता है। यह मुख दया का महत्त्व भी भली-भाँति समझाता है। दूसरे शीलमुख से यह राजा साधुओ को उपदेश देता है कि उत्तम शील—विशुद्ध व्यवहार ही साधुओ का सर्वस्व है। तीसरे तपमुख से यह राजा बताता है कि तप से सभी दोष और दुख उसी प्रकार नष्ट हो जाते है, जैसे सूर्योदय से अधकार नष्ट हो जाता है। चौथे मुख—भावमुख से यह राजा धर्माराधन और अरिहंतो की भक्ति का उपदेश देता है।

ये जो चारित्रधर्म राजा है, ये ससार मे भटकने वाले प्राणियो को असीम सुख प्रदान करते है।

आधे सिंहासन पर चारित्रधर्म राजा के पास एक सर्वांग सुन्दर स्त्री बैठी है। यह महारानी 'विरति' है। यह भी मोक्ष (निवृत्ति) का मार्ग बताने वाली और राजा चारित्रधर्म की अनुगामिनी भार्या है।

महाराज चारित्रधर्म के पास पाच अन्य राजा बैठे हैं। इनमे पहला सामायिक है। यह जैनपुर वासियो को पापो से छुट्टी दिलाता है। दूसरे सहयोगी राजा का नाम छेदोपस्थापन है, यह पापो को करने से रोकता है। तीसरा राजा 'परिहारविशुद्धि है, इसकी आज्ञा से साधु अठारह माह का तप करते है। चौथे मित्र राजा नाम सूक्ष्मसपराय है। यह सूक्ष्म पापो का नाश करता है। पाचवें राजा का नाम यथाख्यात है। यह भी समस्त पापो का नाश करता है।

चारित्र राजा के परिवारीजन इस प्रकार है। श्रमणधर्म का नाम का पुत्र युवराज है। इस युवराज के पास जो दस व्यक्ति बैठे हैं, इनके नाम—क्षमा, मार्दव, आर्जव, मुक्तता, तपोयोग, सयम, सत्य, शौच, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य है। ये दसो श्रमणधर्म युवराज के विशेष सहयोगी है।

चारित्रधर्म के दूसरे छोटे पुत्र का नाम गृहीधर्म है। यह श्रमणधर्म का सहोदर छोटा भाई है। इसके सहयोगी बारह व्यक्ति हैं, जो इसी के पास बैठे दीख रहे है। इनके नाम है—(१) स्थूल प्राणातिपात-विरमणव्रत, (२) स्थूल मृषावाद विरमणव्रत, (३) स्थूल अदत्तादानविरमण व्रत, (४) स्थूल मैथुनविरमण व्रत, (५) स्थूल ममत्वत्यागव्रत, (६) दिग्व्रत, (७) भोगोपभोग परिमाणव्रत, (८) अनर्थदण्ड विरमणव्रत, (९) सामायिकव्रत, (१०) देशावकासिकव्रत, (११) पौषधोपवासव्रत और (१२) अतिथिस-विभाग व्रत।

चारित्रधर्म राजा के पुत्र श्रमणधर्म की पत्नी अथवा राजा की पुत्रवधू का नाम सद्भाव सरिता है। यह मुनियो को बहुत प्रिय है।

सद्गुणरक्तता चारित्रधर्म राजा की दूसरी पुत्रवधू, अर्थात् गृहीधर्म की भार्या है।

इसके अतिरिक्त चारित्रधर्म राजा के अन्य सहयोगी इस प्रकार है—

सम्यग्‌दर्शन नामक सेनापति है, जो दोषो रूपी शत्रुओ का मर्दन करता है। इस सेनापति की पत्नी सुदृष्टि है। सद्बोध नाम का राजा का मत्री है। इस मत्री की पत्नी का नाम अवगति है। सद्बोध मत्री के पाँच मित्र हैं, जिनके नाम—(१) अभिनिबोध [मतिज्ञान], (२) सदागम [श्रुतज्ञान], (३) अवधि, (४) मन पर्यव, और (५) केवल है।

सन्तोष नाम का तत्रपाल है, जो युवराज के पास बैठा दिखाई दे रहा है। सतोष से लडने के लिए मोहादि राजा सदा तैयार रहते है। यह राजा चारित्रधर्म की सेना का एक बडा महारथी है। इसने स्पर्शन

आदि को हराकर अनेक प्राणियो को निवृत्ति नगर भेज दिया है और सदा भेजता रहता है। तत्रपाल सतोप की पत्नी निष्पापासिता है, यह मुनियो को तृष्णारहित कर देती है।

अब चारित्रधर्म राजा की चतुरगिणी सेना पर भी दृष्टि डाले। इस सेना मे गभीरता, उदारता, शूरवीरता आदि रथ है। कीर्ति, श्रेष्ठता, सज्जनता और प्रेम आदि बडे-बडे हाथी है। बुद्धि विशालता, चातुर्य, निपुणता आदि घोडे हैं। अपचलता, मनस्विता, दाक्षिण्य आदि योद्धाओ से परिपूर्ण पदाति सेना है।

निष्कर्ष यह है कि जैसे—महामोह राजा अपने परिवार, सहायक राजा और चतुरगिणी सेना द्वारा जगत को सताप देता है, उसी तरह चारित्रधर्म राजा अपने सहायक-सम्बन्धी, मित्र राजा, सेना आदि द्वारा जगत को सुख, आनन्द और मोक्ष—दु खो से सार्वकालिक निवृत्ति देता है।

प्रकर्प ने मामा विमर्श का आभार प्रकट किया और बोला कि अब तो हमारे लौटने की अवधि के दो महीने ही शेप हैं। अब कुछ देखना भी शेप नहीं है। जो काम हम करने आये थे, वह हो ही गया। अत अब बाकी के दो महीने जैनपुर मे रहकर बिताने चाहिए।

विमर्श ने अपनी सहमति प्रदान की और दोनो मामा-भानजे दो महीने तक जैनपुर नगर मे रहे।

उधर रानी कालपरिणति की आज्ञा से मानवावास नगर मे वसत ऋतु पूर्ण हो गई तथा ताप देने वाली ग्रीष्म ऋतु आ गई। ग्रीष्म बीती तो वर्षा ऋतु आ गई। गर्मी मे यात्रा कठिन थी। वर्षा मे यात्रा की नही जाती। अत विमर्श और प्रकर्प चार महीने जैनपुर मे रहे। उसके बाद दोनो यथासमय अपने नगर मे पहुँचकर माता-पिता, स्वजन सम्बन्धियो से मिले तथा अपने कार्य सम्पादन की सूचना दी।

[३४]

राजा नरवाहन की दीक्षा

यह विषयाभिलाप मन्त्री की पुत्री है। विमर्श और प्रकर्ष के आने से पूर्व विचक्षण ने अपने भाई जडकुमार की मृत्यु रसना द्वारा देखी थी तो उसने रसना का लगभग त्याग ही कर दिया था।

हुआ यह कि लोलता के भड़काने में जडकुमार ने रसना की इच्छा पूर्ति के लिए एक बकरे का वध करना चाहा। बकरा तो बच गया, पर उसका मालिक मारा गया। फिर उसने मनुष्य का मांस ही रसना को खिलाया। अब तो लोलता बार-बार नर-मांस-खाने को उत्तेजित करती। जडकुमार ढूंढकर बालकों व मानव-शिशुओं की नित्य हत्या करता। एक दिन वह शूर नामक क्षत्रिय के घर में उनके बच्चे की चोरी करने लगा तो पकड़ा गया और उसकी खूब पिटाई हुई। परिणाम यह हुआ कि जड-कुमार मर गया।

जडकुमार की घटना देखकर विचक्षण कुमार को विरक्ति हो गई। उसने निश्चय किया कि मैं रसना का पोषण नहीं करूँगा। फिर उसके पिता शुभोदय ने समझाया कि रसना और तुम्हारा अभिन्न संग है। अतः इसका त्याग एकदम नहीं करना चाहिए—धीरे-धीरे त्याग करो। हाँ, इसकी जो दासी लोलता (लोलुपता) है इसे एकदम त्याग दो। विचक्षण कुमार ने लोलता दासी को एकदम त्याग ही दिया। लोलता के अभाव में दुष्ट रसना किसी का कुछ नहीं बिगाड़ सकती। विचक्षण की इच्छा थी कि वह अपने परिवार सहित विवेक पर्वत पर जाकर रहे। लेकिन दूर होने के कारण वह नहीं जा सका। तब शुभोदय ने अपने पुत्र विचक्षण से कहा कि तेरा साला विमर्श बहुत समर्थ है। जब वह आये तो उससे विमलालोक नामक योगांजन ले लेना। उससे घर बैठे ही तुझे विवेक पर्वत के दर्शन हो जायेंगे।

जब प्रकर्ष और विमर्श पहुँचे तो विचक्षण ने विमर्श से उक्त अंजन लिया। अंजन के प्रयोग से विचक्षण ने सैकड़ों लोगों से भरा सात्त्विक-मानसपुर नगर, विवेक पर्वत, अप्रमत्तत्व शिखर, जैनपुर और उसमें रहने वाले श्रमण देखे। उसने चित्तसमाधान मण्डप में जीववीर्य सिंहासन पर चारित्रधर्म राजा को उसके सहायकों सहित देखा। अब विचक्षण ने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया।

विचक्षण ने अपने पिता शुभोदय, माता निजचारुता, पत्नी बुद्धिदेवी, पुत्र प्रकर्ष, साला विमर्श आदि सब को साथ लिया। रसना को भी साथ लिया। केवल लोलता को छोड़ दिया। सबको साथ लेकर विचक्षण आचार्य गुणधर्म के पास पहुँचा और उसने दीक्षा ले ली।

दीक्षा लेने के बाद मुनि विचक्षण अपने परिवार के साथ जैनपुर नगर में रहने लगे। जो आचार मुनि विचक्षण ने आचार्य गुणधर्म से सीखा, उसका भक्तिपूर्वक पालन करने से उनकी रसना निरर्थक जैसी हो गई। अन्त में आचार्य गुणधर्म ने विचक्षण को आचार्य बना दिया। मुनि विचक्षण अब विचक्षणाचार्य हो गए।

× × ×

ससारी जीव अगृहीतसकेता, प्रज्ञाविशाला, सदागम आदि के बीच अपनी आत्मकथा सुना रहा था। उसने आगे कहा कि अपनी पत्नी और माता का वध मैंने शैलराज और मृषावाद की प्रेरणा से किया था। पिता ने मुझे राजभवन से निकाल दिया था। जिस उद्यान मे बैठे मेरे पिता राजा नरवाहन विचक्षणाचार्य की आत्मकथा सुन रहे थे, वहाँ मैं भी बैठा था। आगे क्या हुआ, उसे भी ध्यान देकर सुनो।

× × ×

अपनी आत्मकथा का समापन करते हुए विचक्षणाचार्य ने राजा नरवाहन से कहा—

"राजन् ! तुमने पूछा था कि मैंने कम उम्र में दीक्षा क्यो ली, सो उसका कारण मैंने तुम्हे अपनी आत्मकथा सुनाकर बता दिया। शुभोदय का पुत्र विचक्षण मैं ही हूँ।

"राजन् ! मैं अपने परिवार के साथ हूँ। फिर भी आप मुझे दुष्कर कार्य करने वाला—दीक्षा लेकर श्रमण बनना दुष्कर कार्य करने वाला मानते हैं, इसका कारण जैनधर्म की गुणवत्ता ही है।"

सब कुछ सुनकर राजा नरवाहन को वैराग्य हुआ और दीक्षा लेने की इच्छा भी हुई। उसने विचक्षणाचार्य से कहा कि भगवन् ! आपको बुद्धि-देवी जैसी पत्नी, विमर्श जैसा साला, प्रकर्ष जैसा पुत्र आदि इतना सुन्दर परिवार मिला है। यदि मुझे भी ऐसा परिवार मिलता तो मैं कितना भाग्य-शाली होता।

विचक्षणाचार्य बोले—

'राजन् ! जो परिवारीजन मुझे प्राप्त हैं, वही सब साधुओ के पास होते है। जो-जो घटनाएँ मेरे जीवन मे घटी, वे सभी श्रमणो के जीवन मे घटती है। तुम भी मेरी तरह प्रयत्न करो तो तुम भी मेरे जैसे परिवार वाले श्रमण बनोगे।"

राजा नरवाहन ने दीक्षा लेने का निश्चय किया और अपना राज्य-भार पुत्र को देने की दृष्टि से भिखारी-जैसे रिपुदारण की ओर देखकर सोचा कि यह रिपुदारण तो कुल-कलक है। इसे राज्य कैसे दूँ। उसी समय रिपुदारण का परम मित्र पुण्योदय आ गया, जो उसका साथ बहुत पहले ही छोड़ बैठा था। पुण्योदय के प्रभाव से राजा का पुत्र-प्रेम जाग्रत हो गया। राजा ने रिपुदारण को बुलाकर गोद मे बैठा लिया। फिर विचक्षणाचार्य से पूछा—

"भगवन्! रिपुदारण उच्चकुल मे जन्मा है। अच्छी शिक्षा भी इसने पाई थी। फिर यह कुमार्गी क्यो बन गया ?"

"राजन्! रिपुदारण का इसमे कोई दोष नही है।" विचक्षणाचार्य ने कहा—"सारा दोष इसके मित्र शैलराज और मृषावाद का है। ये दोनो दुष्ट सदा इसे गुमराह किये रहते है।

"राजन्! काफी समय बाद रिपुदारण का इन दोनो से छुटकारा होगा। वह छुटकारा कैसे होगा, यह वृत्तान्त मैं तुम्हे बता रहा हूँ।'

"राजन्! शुभ्रमानस नामक एक नगर है, जहाँ शुद्धाभिसधि नाम का राजा राज्य करता है। उस राजा के दो रानियाँ है, वरता और वर्यता। इन दोनो रानियो ने एक-एक पुत्री को जन्म दिया है—मृदुता और सत्यता। शुद्धाभिसधि की ये दोनो पुत्रियाँ जगत को आनन्द देने वाली और मुनियो के मन को भी मोहने वाली है।

"राजन्! किसी तरह तुम्हारे पुत्र रिपुदारण का विवाह मृदुता और सत्यता से हो जाए तो उसके दोनो पापी मित्र शैलराज और मृषावाद तुरन्त किनारा कर जायेगे। इन दोनो के साथ तुम्हारे पुत्र का विवाह कब होगा, इसकी योजना बनाने वाला कोई और ही है। अत इस विषय मे तुम्हे चिन्ता करने की आवश्यकता नही है, क्योकि तुम कुछ कर भी नही सकते। अब तो तुम वही करो, जो तुम्हे करना है।"

× × × ×

ससारी जीव ने अगृहीतसकेता से कहा—

"बहन अगृहीतसकेता! इसके बाद मेरे पिताजी महाराज नरवाहन ने मेरा राज्याभिषेक किया। मैं सिद्धार्थपुर नगर का राजा बन गया। फिर उन्होने पूरे विधि-विधान से श्रामणी दीक्षा ले ली और गुरु विचक्षणाचार्य के साथ विहार किया।

"अगृहीतसकेता ! नन्दीवर्धन के बाद मेरे जो-जो जन्म हुए वे सब मैंने तुम्हे सुनाये और बताया कि महामोह के सहायको ने मेरा कितना पतन किया। फिर मैं रिपुदारण बना तो शैलराज—अभिमान और मृषावाद ने मेरा पीछा नही छोडा। पुण्योदय के सहयोग से मैं सिद्धार्थपुर नगर का राजा तो बन गया, पर शैलराज और मृषावाद ने मुझे पुन अपने शिकजे मैं कस लिया और मेरी अधोगति कराई। यदि मैं तब यह जान जाता कि शैलराज और मृषावाद मेरे दुष्टतम शत्रु हैं तो मेरी दुर्दशा कई जन्मो तक होती रही, वह न होती।

"जिन्हे मैं अपना शुभचिन्तक, हितैषी और मित्र समझता, उन दोनो दुष्टतम शत्रुओ—शैलराज और मृषावाद ने किस तरह मेरा पतन कराया, अन्त मे तुम मेरा वह इतिवृत्त भी सुन लो।"

इसके बाद ससारी जीव रिपुदारण के रूप में अपने गर्व और पतन की कहानी सुनाने लगा। □

[३५] रिपुदारण का गर्व और पतन

राज्य प्राप्त होते ही रिपुदारण सारे जगत को तृण-धूल के समान समझने लगा। यह शैलराज ने किया। मृषावाद के प्रभाव से झूठ बोलना रिपुदारण के लिए स्वाभाविक और सहज बन गया। कालान्तर में तपन नाम का चक्रवर्ती रिपुदारण के नगर में आया। उसका प्रभाव दिग्दिगन्त मे फैला था और वह अपने क्षेत्र का निरीक्षण करने आया था। रिपुदारण के मन्त्रियो ने उससे प्रार्थना की—

"राजन् ! आप तपन चक्रवर्ती का स्वागत कीजिए, क्योकि उसकी प्रसन्नता में ही हम सबकी भलाई है। आपके पिता भी तपन चक्रवर्ती का सम्मान करते थे। सभी राजा उसे मान देते हैं। चक्रवर्ती का रुष्ट होना हित मे नही है।"

रिपुदारण को शैलराज ने भडकाया तो वह अपने मन्त्रियो पर उबल पडा—

"मूर्खो ! मेरे सामने तपन चक्रवर्ती क्या चीज है ? उसे ही मेरी पूजा करनी चाहिए, न कि मैं उसकी करू।"

इस पर रिपुदारण के मन्त्रियो ने उसके पैर पकडकर पुनः प्रार्थना की—

"पृथ्वीनाथ ! ऐसा मत बोलिए, वरना अनर्थ हो जाएगा। चक्रवती की शक्ति अपरिमित है। उसकी अवज्ञा से आपको राज्य मुख का त्याग करना पडेगा।"

इस दूसरी प्रार्थना से शैलराज के लेप का प्रभाव कुछ कम हो गया तो रिपुदारण ने मन्त्रियो से कहा—

"अच्छा, पहले तुम लोग भेटादि ले जाकर तपन चक्रवर्ती का स्वागत करो। मैं वाद में आ जाऊँगा।"

इसके वाद रिपुदारण के मन्त्री रत्नादि की भेंट लेकर वहाँ पहुँचे, जहाँ तपन चक्रवर्ती पडाव डाले पडा था। रिपुदारण के मन्त्रियो के पहुँचने से पहले चक्रवर्ती के जासूस पहुँचे। और उन्होने रिपुदारण और उसके मन्त्रियो के वीच हुई वातचीत अपने राजा तपन चक्रवर्ती को वता दी। उसके वाद रिपुदारण के मन्त्री स्वागत करने पहुँचे तो चक्रवर्ती ने सवको आसन दिया तथा रिपुदारण की कुशल क्षेम पूछी और कहा—रिपुदारण क्यो नही आये ?

रिपुदारण के मन्त्रियो ने तपन चक्रवर्ती को वताया—

"वे आपको नमस्कार करने शीघ्र ही आयेंगे।"

ऐसा कहकर रिपुदारण के मन्त्रियो ने उसे बुलाने सेवक भेजे। अव तो रिपुदारण अकड गया और वोला—

"मैं तपन के पास हरगिज नही जाऊगा। मेरे जो मन्त्री उसके पास गए हैं, यदि वे अपना जीवन चाहते है तो लौट आये।"

राजसेवक पुन लौटकर तपन चक्रवर्ती के पास गए और रिपुदारण का कथन दुहरा दिया। रिपुदारण की वात सुनकर उसके मन्त्री घवरा गए। लेकिन तपन चक्रवर्ती वहुत ही व्यवहार कुशल था। उसने रिपुदारण के मन्त्रियो से कहा—

"तुम लोग क्यो घवराते हो ? तुम्हारा राजा अभिमानी है। वह घर आये का सम्मान करना भी अपनी तौहीन समझता है। लेकिन तुम्हारा तो कोई दोष नही है। अत तुम निर्भय रहो।

"मन्त्रियो ! रिपुदारण न तो राजा वनने के योग्य है और न तुम्हारा स्वामी वनने के योग्य है, क्योकि राजहसो का स्वामी कौआ नही हो सकता।"

रिपुदारण के सभी मन्त्री उसके विरुद्ध हो गए। तपन चक्रवर्ती ने अपने मन्त्री योगेश्वर को रिपुदारण के पास उसे पाठ पढाने भेजा। योगेश्वर तन्त्रवादी था। वहुत से राजपुरुषो को लेकर मन्त्री योगेश्वर रिपुदारण के

पास पहुँचा। जिस समय योगेश्वर रिपुदारण के पास गया, शैलराज और मृषावाद उससे चिपटे हुए थे। योगेश्वर के इशारे पर उसके साथ वाले सेवको ने रिपुदारण को एकदम नगा कर दिया। उसके बाल नोच डाले गए। उसके शरीर पर राख पोत दी। रिपुदारण का ऐसा बीभत्स और हास्यास्पद रूप हो गया कि सब लोग तालियाँ पीट-पीट कर हँसने लगे। तपन चक्रवर्ती के मत्री योगेश्वर के साथ जो राजसेवक थे, वे ताल दे-दे कर गाने लगे—

'जो प्राणी अविवेक की बहुलता के कारण गर्व करते है और विश्व को बाधा पहुँचाने वाला असत्य बोलते है, वे इसी भव मे अपने पाप के बोझ से तीव्र विडम्बनाओ और दु खो को प्राप्त करते है।"

अपनी दशा से विवश रिपुदारण सेवको के पैरो मे गिर-गिर कर दया की भीख माँग रहा था। विवश होकर उसे भी सेवको के साथ नाचना पडता था।

सेवको ने दूसरा पद गाया—

'अरे लोगो! आप शैलराज के साथ विलास करने का फल तो देखे कि जो रिपुदारण अपने गुरुजनो को भी नमस्कार नही करता था, वही आज सेवको के पैरो मे गिर रहा है।"

× × ×

ससारी जीव ने अगृहीतसकेता से कहा—

"बहिन अगृहीतसकेता! योगेश्वर मेरे पिछले जीवन के बारे मे यह जानता था कि शैलराज के वश मे होकर मैंने अपनी माता और पत्नी को मारा था। अत योगेश्वर ने सेवको से कहा—

'लोगो! इस प्रकार गीत गाओ कि जो व्यक्ति जन्म देने वाली माँ और बुद्धि देने वाले गुरु का अपमान करता है, वह यही दासो के पैरो से रौदा जाता है और जो झूठ बोलकर लोगो को दु खी करता है, वह तपन चक्रवर्ती द्वारा इसी प्रकार दण्ड पाता है।

"अगृहीतसकेता! अन्त मे योगेश्वर ने ही मुझसे कहा कि रिपुदारण तूने कभी भी गुरु और माता-पिता को नमस्कार नही किया, अत तू आज तपन चक्रवर्ती के चरणो मे गिरकर नाच।

"अगृहीतसकेता! मेरी जो दुर्दशा हुई, उसका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। लात-घूँसो से मेरी पिटाई की गई।

"तपन चक्रवर्ती ने मेरे छोटे भाई कुलभूपण को गद्दी पर बैठा दिया। मैं तो पिटते-पिटते ऐसा हो गया कि मेरे पेट से रक्त निकलने लगा। भवितव्यता ने मुझे जो भवमेद्य गुटिका दी थी, वह समाप्त हो गई थी, अत उसने मुझे दूसरी गोली दे दी।

"अगृहीतसकेता! भवमेद्य गोली के प्रभाव से मैं मर कर दूसरे भव मे नरक मे गया। उसके वाद भवितव्यता वार-वार गोलियाँ देकर मुझे अनेक योनियो मे भटकाती रही। मैं मनुष्य भव मे भी गूँगा-बहरा, अपाहिज बनता रहा।"

ससारी जीव ने रिपुदारण के अन्त के साथ जब अपनी आत्मकथा समाप्त की तो प्रज्ञाविशाला सोचने लगी कि ससारी जीव को शैलराज और मृषावाद की मित्रता बहुत महँगी पडी। इसने वार-वार मिले देव-दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाप बध करने में यो ही व्यर्थ गँवा दिया। घमण्ड और झूठ—शैलराज और मृषावाद मनुष्य के दुष्टतम शत्रु है, पर मनुष्य उन्हे अपना मित्र समझकर अपना जन्म गँवा देता है।

इसके बाद ससारी जीव ने आगे कहा—

"अगृहीतसकेता! अन्त मे मेरी पत्नी भवितव्यता ने मुझे एक और गोली देकर कहा कि अव तुम्हारा जन्म वर्धमान नगर मे होगा। वहाँ तुम्हारा मित्र पुण्योदय साथ रहेगा। भवचक्रपुर मे मनुजगति नामक नगर के मुहल्ले वर्धमान नगर मे मेरा जन्म हुआ। वहाँ मुझे मध्यम प्रकार के गुण प्राप्त हुए।"

× × ×

हे प्राणियो! इस प्रकार मैंने (सिद्धर्षि गणिने) मध्यस्थ भावो का अवलम्बन लेकर मान, रसना और असत्य के चरित्र का वर्णन किया। आप भी मध्यस्थ भाव का सहारा लेकर और विशुद्ध अन्त करण वाले बन कर रसना, मान और असत्य का त्याग कर जैनेन्द्र मत के प्रति उत्कृष्ट प्रेम धारण करे।

(प्रथम प्रकरण समाप्त)

[१] वामदेव : माया और स्तेय

सदागम, भव्य पुरुष, प्रज्ञाविशाला और अगृहीतसकेता ससारी जीव से उसकी आत्मकथा सुन रहे है। रिपुदारण तक की अपनी आत्म-कथा सुनाने के बाद ससारी जीव ने अपने अन्य छोटे-मोटे जन्म सुनाने के बाद आगे कहा कि मैं वामदेव नाम का श्रेष्ठि पुत्र बना। जब मैं नन्दिवर्धन था, तब वैश्वानर (क्रोध) मेरा अभिन्न मित्र था और हिंसा से तो मेरा विवाह ही हुआ था। उसके बाद जब मैं रिपुदारण बना तो शैलराज (अभिमान) मेरा मित्र बना और उसने मेरी दुर्गति कराई। शैलराज के साथ मृषावाद ने भी मेरे जीवन का सर्वनाश किया। लेकिन अगृहीतसकेता ! मैं अपने शत्रुओ को कभी नही पहचान पाया। मैं उन्हे अपना हितैषी और शुभ-चिन्तक ही समझता रहा और अपने जीवन को उन्ही के हाथ का खिलौना बनाता रहा। अब जब मैं वामदेव नामक श्रेष्ठिपुत्र बना तो माया और स्तेय के वश मे होकर दुर्लभ मानव-भव को गर्त में गिरा दिया। अब तुम वामदेव के जीवन की मेरी आत्म-कथा सुनो।

× × × ×

अगृहीतसकेता ! यह तो तुम जान ही गई हो कि मेरी आत्मकथा मे दो तरह के नगरो—देशो का उल्लेख हुआ है—एक बाह्य और दूसरे अन्तरग। चित्तवृत्ति अटवी, चित्तसौन्दर्य नगर, तामसचित्त आदि अन्तरग नगर है, तो बाह्य देश मे वर्धमान नामक नगर था। हर नगर की अपनी एक विशेषता होती है। इस वर्धमान नगर की विशेषता यह थी कि उसमे रहने वाले प्राणी जैनधर्मपरायण थे और थे जातिवत्सल, अतिथिसेवी तथा उदार। इस नगर मे धवल नामक राजा राज्य करता था।

वर्धमान नगर के राजा धवल की पटरानी का नाम कमलसुन्दरी था। राजा-रानी दोनो धर्मनिष्ठ थे। रानी कमलसुन्दरी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम विमल रखा गया। राजकुमार विमल पुण्यो का धनी, सुन्दर, सुलक्षण और होनहार था। जितना उसे माता-पिता चाहते थे, उतना ही प्रजाजन भी चाहते थे।

वर्धमान नगर मे सोमदेव नामक एक नगर-प्रसिद्ध श्रेष्ठी रहता था। राजा धवल से भी इसकी अच्छी जान-पहचान थी। इसकी सेठानी का नाम

कनकसुन्दरी था। सेठ-सेठानी भी धर्मपरायण थे। इनके वामदेव नामक एक पुत्र था। भव-परम्परा से ससारी जीव ने ही वामदेव के रूप में कनकसुन्दरी सेठानी की कोख से जन्म लिया था। पुण्योदय नाम का परम-हितैषी अन्त-रग मित्र भी वामदेव के साथ जन्मा था।

जन्म के कुछ ही वर्षो बाद जब वामदेव कुछ समझदार हो गया तो एक दिन एकान्त मे काले रग के दो पुरुष और झुकी हुई कमर की एक स्त्री उसके पास आये। इनमे से एक पुरुष वामदेव से बोला—

"क्यो भैया! तुमने मुझे पहचाना कि नही?"

"मेरी पहचान मे नही आये कि तुम कौन हो।" वामदेव ने काले रग के पुरुष से कहा—"लेकिन तुम अपने ही स्वजन-जैसे मालूम पड़ते हो।"

"हमारा-तुम्हारा कई जन्मो का साथ है।" उस पुरुष ने कहा—"लेकिन तुम मुझे भूल गए, यह जानकर मुझे भारी सताप हुआ है। तू मुझे ही नही भूला, अपने को ही भूल गया है। तेरा नाम ससारी जीव है। वामदेव, रिपुदारण, नन्दिवर्धन आदि तो तेरी देहो के नाम हैं। पहले तू असव्यवहार नगर मे रहता था। भ्रमण की इच्छा से जब तू असव्यवहार नगर छोडकर चला तो तेरी पत्नी भवितव्यता भवभेद्य गुटिका दे-देकर तुझे भव-भ्रमण कराती रही। खैर, यह कहानी तो लम्बी है। मैं भी कई नाम-रूपो से तेरे साथ रहा है। जब तू रिपुदारण बना था, तब तू मुझे मृषावाद के नाम से जानता था। तू मुझे पाकर धन्य था। मेरी शक्ति से भी तू प्रभा-वित था। मैंने तुझे बताया था कि मेरी जो भी सामर्थ्य है, वह मेरी बहन माया के कारण है। यह देख, मैं तेरी भलाई के लिए अपनी बहन माया को भी साथ लाया हूँ। यह रागकेसरी की पुत्री है। इसकी शक्ति का लोहा पूरा जगत मानता है। यह दूसरा व्यक्ति स्तेय है। इसकी शक्ति भी अद्वितीय है। हम तीनो तेरे बडे काम के हैं।"

वामदेव ने बडा भारी हर्ष प्रकट करते हुए कहा—

"मैंने तुम्हे एकाएक ही नही पहचाना, यह मेरी भूल है। लेकिन जैसे अपनो को देखते ही अपनत्व जागता है, वैसे ही तुम्हे देखते ही मैं हर्ष से भर गया था। मैं तुम्हारा हृदय मे स्वागत करता हूँ। अब तुम सदा मेरे साथ ही रहोगे।"

वामदेव ने मृषावाद, स्तेय और माया—तीनो को स्थान दिया। वे तीनो अपनी योगशक्ति से वामदेव की देह मे प्रविष्ट हो गए।

अब तो वामदेव की चेतना भ्रमित होने लग गई। माया की शक्ति

से वह पूरे ससार को ठगना चाहता था। स्तेय उसे चोरी करने की प्रेरणा देता था। जिसका साथी स्तेय हो, वह बिना परिश्रम और बिना भाग्य (पुण्य) के ही धनवान बन सकता है, यह सब वामदेव सोचने लगा।

वर्धमान नगर के राजा धवल और श्रेष्ठी सोमदेव के निकट के सबध के नाते रानी कमलसुन्दरी और सेठानी कनकसुन्दरी का भी मिलना-जुलना था। जब भी सेठानी रानी के यहाँ जाती बालक वामदेव को भी साथ ले जाती। राजकुमार विमल और श्रेष्ठिपुत्र वामदेव समवयस्क थे। दोनो माताओ के मिलने-जुलने से विमल और वामदेव भी साथ-साथ खेलते और उठते बैठते थे। इस तरह दोनो मे बचपन से ही मित्रता हो गई। बड़े होकर भी राजपुत्र विमल और श्रेष्ठिपुत्र वामदेव साथ-साथ खाते-पीते थे और घूमने-फिरने में भी सदा साथ रहते थे। दोनो घनिष्ठ मित्र थे। दोनो युवा हो गए थे और कलाओ-विद्याओ का उपार्जन भी किया था। फिर भी राजकुमार विमल विचक्षण, विनम्र और विद्याव्यसनी था। इस मित्रता में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह थी कि विमल की मित्रता सच्ची थी और वामदेव की कपट तथा कुटिलता से भरी हुई, क्योकि वह चिरसगिनी माया के वशीभूत रहता था। वामदेव ऊपरी व्यवहार तो बहुत अच्छा करता था, पर मन में यही सोचता रहता था कि मै कैसे इसको ठगूँ या इसके यहाँ चोरी करूँ। वस्तुत तो वामदेव भी शुद्ध-सात्त्विक था, पर माया और स्तेय ने उसके सोच (चिन्तन) पर परदा डाल दिया था। जो भी हो, वर्धमान नगर के नागरिक, राजा धवल, रानी कमलसुन्दरी, सेठ सोमदेव और सेठानी कनकसुन्दरी यह समझते थे कि विमल और वामदेव अभिन्न मित्र हैं। □

[२]

क्रीडानन्दन वन मे

वनभ्रमण की इच्छा से एक बार विमल और वामदेव क्रीडानदन नामक वन मे पहुँचे। यह वन यथानाम तथागुण के अनुसार बहुत ही रम्य और कटक तथा झाड-झखाडो से रहित—निरापद था। इसमे बडे सुन्दर लतामण्डप और कदली कुञ्ज बने हुए थे। वन के अनेक जीव यहाँ क्रीडा करते थे। ये जीव मनुष्यो को देखकर भागते नही थे, क्योकि यहाँ अहिंसक और दयाधर्मी नर-नारी ही भ्रमण करने आते थे।

विमल और वामदेव एक लता मण्डप मे बैठे थे कि उन्हे कुछ दूर से स्त्री-पुरुष की बातचीत तथा झाँझर बजने का शब्द सुनाई दिया। झाँझर वह आभूषण है, जिसे स्त्रियाँ अपने पैरो मे पहनती है। आवाज स्पष्ट न होने के कारण दोनो मित्र उठकर आवाज की ओर चले तो रास्ते में उन्हे स्त्री-पुरुष के पद चिन्ह मिले। उन्हे देखकर विमल वामदेव को नर-नारी के लक्षण बताने लगा।

स्त्री-पुरुष—दोनो के शरीर लक्षण और उनके शुभाशुभ परिणाम बताने के बाद जब विमलदेव मौन हुआ तो वामदेव ने उससे पूछा—

"मित्रवर! तुमने कहा था कि सभी शुभ लक्षणो का आधार अत्यन्त निर्मल सत्त्व अथवा आत्मिक बल है। तो मैं जानना यह चाहता हूँ कि आत्मिक बल जितना पहले होता है, उतना ही रहता है या इसी जन्म मे बढाया भी जा सकता है।"

"हाँ, आन्तरिक अथवा आत्मिक बल में वृद्धि भी हो सकती है।" विमल ने कहा—"वामदेव! ज्ञान-विज्ञान, धैर्य, स्मृति, समाधि, ब्रह्मचर्य, दया, दान, तप आदि आन्तरिक बल बढाने के साधन या उपाय हैं। जैसे कपडे से पौंछने पर दर्पण साफ हो जाता है, उस पर जमी धूल हट जाती है, ऐसे ही इन साधनो से भी हमारा सत्त्व शुद्ध सो जाता है। अन्तरग की चिकनाई—विकार दूर हो जाते है।"

यह बात वामदेव ने सुन तो ली और ऊपरी मन से 'हाँ' भी कह दिया। लेकिन माया के प्रभाव से विमल की हितकारी बात उसे अच्छी नही लगी। इस प्रकार बाते करते हुए दोनो मित्र उस लता मण्डप के निकट पहुँच गए, जहाँ स्त्री-पुरुष का एक जोडा आलिगनबद्ध और रसनिमग्न था। उन दोनो के शारीरिक लक्षणो को देखकर विमल ने वामदेव से कहा कि वामदेव देखो, यह स्त्री-पुरुष साधारण स्त्री-पुरुष नही है। इनमे विशिष्ट लक्षण दिखाई दे रहे है, ऐसे लक्षण वाला पुरुष चक्रवर्ती होता है और स्त्री चक्रवर्ती की पत्नी होती है।

इसी बीच आकाश मे दो तेजस्वी पुरुष दीखे, जो लता मण्डप के ऊपर ही मँडराने लगे। दोनो के हाथ मे खड्ग थे। उनमे से एक बडे क्रोध से लतामण्डप वाले पुरुष को ललकारने लगा—

"हे नराधम! यहाँ तू इस स्त्री को लेकर छिपकर बैठा है, पर हमारी पहुँच से बाहर तू कभी नही है। आज हम तेरा वध करके ही रहेगे।"

इस ललकार को सुनकर लतामण्डप वाले पुरुष ने स्त्री से कहा— "तुम सावधानी से रहना। मैं इन दुष्टो को पाठ पढाकर आता हूँ।"

अपने साथ की स्त्री को लतामण्डप मे ही छोडकर वह पुरुष भी आकाश मे उड गया। पहले जो दो पुरुष आकाश मे थे, उनसे लतामण्डप वाले पुरुष से आकाश युद्ध होने लगा। जो दो पुरुष पहले आये थे, उनकी योजना यह थी कि एक तो लतामण्डप वाले पुरुष से युद्ध करे और दूसरा नीचे उत्तर कर लतामण्डप से उक्त स्त्री को लेकर भाग जाए। इसी इरादे से दूसरा आकाश-पुरुष बार-बार नीचे उतरने का प्रयत्न करता था और स्त्री भयभीत होकर काँप रही थी कि यह दुष्ट मुझे ले जाएगा। तव विमल ने उसे धीरज बँधाया—बहन ! तुम निर्भय रहो। मेरे रहते तुम्हारा कोई बाल भी बाँका नही कर सकता।

आकाश-पुरुष जैसे ही लतामण्डप के नीचे उतरने को हुआ कि विमल के गुणो से प्रभावित होकर वन देवता ने उसे त्रिशकु की तरह स्तम्भित कर दिया। अब तो वह अपने हाथ-पैर भी नही हिला सकता था। उधर लतामण्डप वाले पुरुष ने अपने प्रतिद्वन्द्वी को पराजित कर दिया और जब वह हारकर भागने लगा तो लतामण्डप वाले पुरुप ने उसका दूर तक पीछा किया। इधर वनदेवता ने स्तम्भित पुरुष को यह सोचकर मुक्त कर दिया कि स्त्री-रक्षा करने का मेरा काम पूरा हो ही गया। मुक्त होने के वाद दूसरा आकाश-पुरुप भी भयभीत होकर भाग गया।

अपने पति के चले जाने के कारण स्त्री लतामण्डप मे विलाप कर रही थी कि दोनो दुष्ट मेरे मिलकर मेरे पति का कुछ अनिष्ट न कर दे। विमल उसे सात्वना दे रहा था।

थोडी ही देर वाद स्त्री का पति दोनो को पूरी तरह पराजित करके लौट आया और लतामण्डप मे नीचे उतर कर विमल कुमार को धन्यवाद देने लगा कि आप कोई भी हो पर मेरे पीछे मेरी स्त्री की रक्षा करके आपने मुझ पर वडा उपकार किया है। आप मेरे वन्धु, मित्र, जीवन, प्राण और सर्वस्व है।

अपनी प्रशसा से सकुचित होकर विमल ने उक्त पुरुप से कहा—

"मैंने तो आपके साथ कुछ भी नही किया। आपकी स्त्री की रक्षा आपके ही पुण्यो से हुई है। फिर भी मैं इस घटना का रहस्य जानना चाहता हूँ कि ये दोनो व्यक्ति कौन थे, जो आपसे युद्ध करके आपकी स्त्री को लेजाना चाहते थे।"

पटक दिया, जिससे उसकी हड्डियाँ टूट गई, उसकी सब विद्याएँ नष्ट हो गईं और वह निष्पद हो गया। अब मुझे आम्रमजरी की चिन्ता थी कि पापी चपल उसे अवश्य उठा ले गया होगा। मैं जब इधर को आ रहा था तो आकाशमार्ग में ही मुझे चपल मिल गया। मैंने उसकी भी अचल-जैसी दुर्गति कर दी। यहाँ मैंने आपके द्वारा अपनी पत्नी को रक्षित देखा तो मैं आपके उपकार से कृतकृत्य हो गया। आपको देने योग्य मेरे पास कुछ भी नही है। उपकार का बदला चुकाना भी एक प्रकार से कृतघ्नता ही है। फिर भी मेरा आग्रह है कि आप मुझसे कुछ अवश्य माँगे।"

रत्नचूड के बार-बार आग्रह करने पर भी जब विमल ने उससे कुछ भी लेना नही चाहा तो उसने अपनी इच्छा से ही उसे एक अत्यधिक मूल्य-वान मणि देनी चाही और कहा कि इसे स्वीकार कर मुझ पर अनुग्रह कीजिए। उस रत्न-मणि के गुण बताते हुए रत्नचूड ने कहा कि यह रत्न सर्व रोगो को हरने वाला, दारिद्र्य को नष्ट करने वाला और शक्ति-सामर्थ्य बढाने वाला चिन्तामणि के समान है। सब कुछ जानने के बाद विमल ने कहा—

"ऐसा मूल्यवान रत्न तो विद्याधरो के पास ही रहना चाहिए। मेरी अपेक्षा यह आपके लिए ही उधिक उपयोगी है। अत आपने कहा और मैंने ले लिया, ऐसा मानकर इसे आप अपने पास ही रखिये। आपके पास रहा तो मैं मानूगा कि मेरे पास ही है।"

ऐसी अद्भुत नि स्पृहता देखकर रत्नचूड गद्गद हो गया। हर्ष के साथ उसे इसका दु ख भी हुआ कि मैं अपने उपकारी को कुछ भी दे नही पा रहा हूँ। तब पति की उदासी देखकर आम्रमजरी ने विमल से कहा—

"विमल भैया! स्पृहारहित होने पर भी सज्जन पुरुष उस दान को लेने से इन्कार नही करते जो प्रेम से प्रेरित होकर दिया गया हो। क्योकि सज्जन पुरुष ऐसे प्रेम दान को अस्वीकार कर दानी का दिल नही तोडते। अत आप मेरे स्वामी को इच्छा स्वीकार कर ही लीजिए।"

विमल ने रत्नचूड से दिव्यरत्न मध्यस्थ भाव से स्वीकार कर लिया। रत्नचूड ने एक डिबिया मे बन्द करके वह रत्न विमल के उत्तरीय के छोर मे बाँध दिया था।

अन्त मे वामदेव ने रत्नचूड से कहा कि रेत पर जब हमने आप दोनो के पद चिन्ह देखे थे, तब मेरे मित्र विमल ने कहा था कि इस चिन्ह वाला

"ममत्व।"

फिर अपने उत्तर की व्याख्या करते हुए बोला—

"ममत्व, मेरापन जो भी कहो, यह मोहराजा का अमोघ मन्त्र है। ममत्व ससार को अन्धा और बहरा बना देता है। आँखो से देखते हुए और कानो से सुनते हुए भी 'ममत्व' को कभी तृप्ति नही होती, उसे कभी शान्ति नही मिलती। चाहे जितना देखने पर भी अधिक देखने की इच्छा इसे (ममत्व को) होती है, चाहे जितना सुनने पर भी यह नही अघाता। ससार का कारण क्या है, इस दूसरे प्रश्न का उत्तर भी ममत्व है। ममत्व से ही ससार-भ्रमण होता है।"

इसके बाद पद्मकेसर ने ही दूसरा प्रश्न किया—

"युद्ध करने में जिसका मन लगा हो, वह किससे अधिक भयभीत नही होता ? ग्रीष्म मे पवन से कॉप रहे वृक्ष कैसे लगते है ?"[1]

थोडा विचार करके हरिकुमार ने प्रश्न दुबारा सुना और फिर तुरन्त उत्तर दिया—

"दलनाया।"

अब उसने अपने उत्तर की व्याख्या की। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि उत्तर प्रश्न से बडा होता है, पर राजकुमार हरि बडे प्रश्न का छोटा—एक ही शब्द में उत्तर दे रहा था। अत उसे व्याख्या भी करनी पडती थी। उसने अपने 'दलनाया' उत्तर की व्याख्या की—

"युद्धस्थल में लडने वाले योद्धा का मन युद्ध लगा रहता है। अत बडी से बडी सेना देखकर वह भयभीत नही होता। अत दलना का अर्थ है कि (योद्धा) सेना से नही डरता। ग्रीष्म मे पवन से कॉप रहे वृक्ष कैसे लगते है का उत्तर भी दलनाया—दल-न-आया, अर्थात् दल (पत्तो) से रहित ठूठ-जैसे लगते हैं।"

हरिकुमार की सूझ और बुद्धि चातुर्य से सभी मित्र चकित थे। अब विलास ने भी एक प्रश्न किया। वह जैनदर्शन का मर्मज्ञ और धार्मिक था। अत उसने धर्म सम्बन्धी प्रश्न किया, जो चार पक्तियो का श्लोक था। उसका प्रश्न था—

"किस प्रकार का राजकुल (राज्य) अन्त मे विषाद को प्राप्त होता होता है (नष्ट हो जाता है) ?

---

१ कस्या बिभ्यद्भीरुर्न भवति संग्रामलम्पटमनस्क ।
वातात्कम्पित वृक्षा निदाघकाले च कीदृशा ।।

अष्टम-प्रस्ताव

[१] ससारी जीव—राजपुत्र गुणधारण के रूप मे

मानवावास मे सप्रमोद नामक एक अद्वितीय नगर था। इस नगर के नागरिक देवसुखो का भोग करने वाले देवस्वरूप ही थे। दानादि सत्कर्म अथवा पुण्यकर्म तथा धर्मरुचि वाले नागरिको के इस सप्रमोद नगर पर मधुवारण नाम का राजा राज्य करता था। इसकी परम सुन्दरी, सुशील और पतिव्रता सुमालिनी नामक रानी थी।

नन्दिवर्धन, रिपुदारण, वामदेव, धनशेखर, धनवाहन आदि अनेक मानव-भवो को भोगने के बाद ससारी जीव ने अपनी प्रिया भवितव्यता की कृपा से महारानी सुमालिनी की कोख से जन्म लिया। भवितव्यता ने पुण्योदय को भी इसके साथ ही भेजा था। पुण्योदय के साथ जन्मे ससारी जीव का जन्मोत्सव राजा मधुवारण ने बडी धूमधाम से मनाया और यथा-समय उसका नाम गुणधारण रखा। राजकुमार गुणधारण सर्वागसुन्दर और सुदर्शन था। पाँच धाये इसका पालन-पोषण करती थी।

एक दूसरे निकटवर्ती नगर मे विशालाक्ष नामक राजा राज्य करते थे। ये राजा मधुवारण के सगोत्रीय भाई थे और दोनो मे अटूट मैत्री थी। स्नेह सम्बन्ध थे। राजा विशालाक्ष के कुलन्धर नाम का एक सुन्दर पुत्र था, जिसका जन्म भी गुणधारण के साथ ही हुआ था। राजा मधुवारण और राजा विशालाक्ष की घनिष्ठ मित्रता के कारण राजपुत्र गुणधारण और राजपुत्र कुलन्धर मे बचपन से ही मित्रता हो गई। दोनो साथ-साथ खेले, साथ ही विद्याभ्यास किया और साथ ही खाया-पिया। बडे होकर दोनो कलाओ मे निष्णात हुए और साथ-साथ ही रहने लगे। स्नेहवश कुलन्धर अपना नगर छोडकर राजपुत्र गुणधारण के साथ उसी के भवन मे रहता था। दोनो साथ-साथ ही उठते-बैठते तथा भ्रमण आदि को जाते थे। बडे होकर दोनो दो कामदेव की कल्पना को साकार करते थे। यह कहना कठिन था कि दोनो मे कौन अधिक सुन्दर है।

सप्रमोद नगर से थोडी दूर नन्दन वन जैसा एक सुन्दर विशाल उद्यान था, जो आह्लादमन्दिर नाम से जाना जाता था। उसमे बने अने-

जल विहार कुण्ड, लतामण्डप, कदली कुञ्ज फलो वाले वृक्ष और पुष्पपादपो की शोभा सदा मन को मोहती रहती। एक बार गुणधारण और कुलन्धर इस उद्यान में घूमने गए। वहाँ इन्होने दो सुन्दर रमणियो को देखा। इनमे एक तो लावण्यनिधि और साक्षात् अप्सरा थी। दूसरी पहली से कुछ कम सुन्दर थी। प्रथम रमणी को गुणधारण ने देखा तो देखता ही रह गया। वह उसके रूप पर मोहित हो गया और अपनी सुध-बुध भूल बैठा।

कुलन्धर ने गुणधारण को कामबिद्ध देखा तो टोका—"मित्रवर ! चलो घर चले।" अपनी मनोदशा छिपाने के लिए गुणधारण ने स्वय पर नियत्रण किया और बोला—"चलो, चलते है।" इस प्रकार उद्यान सुन्दरी को हृदय मे बसाकर गुणधारण राजभवन लौट आया।

कुलन्धर ने गुणधारण को कुरेदा तो उसने वताया—

"मित्र ! अब तुमसे क्या छिपाना ? जो सुन्दरी मैंने आज प्रात उद्यान में देखी, मैं उसके बिना रह नही सकता।"

"यदि ऐसी वात है तो वह तुम्हे अवश्य मिलेगी। तुम उसे चाहते हो तो वह भी तुम्हे चाहती होगी। कल सवेरे पुन उद्यान चलेगे। आशा है, वह अवश्य आयेगी।"

दूसरे दिन प्रात गुणधारण और कुलन्धर पुन उद्यान-भ्रमण को गए कि कलवाली दोनो रमणियाँ पुन आयेगी और उन दोनो मे जिस एक पर गुणधारण अनुरक्त है, वह अवश्य ही गुणधारण को प्राप्त होगी। □

[२] मदनमजरी

वैताढ्य पर्वत पर गधसमृद्ध नाम का विद्याधरो का एक सुन्दर नगर था। यह नगर विद्याधरो के चक्रवर्ती राजा कनकोदर की राजधानी था। विद्याधर चक्रवर्ती कनकोदर के कामलता नामक रानी थी। सतान की आशा मे राजा-रानी के काफी दिन वीत गये। सतान-प्राप्ति के सभी उपाय—अनुष्ठान आदि से भी जब इन्हे कोई सफलता नही मिली तो निराश होकर बैठ गये।

निराशा के बाद भी भाग्योदय होता है। पुण्योदय अलवा भाग्योदय का कोई समय नही। प्रौढायु मे रानी कामलता गर्भवती हुई और उसने एक

सुन्दर कन्या को जन्म दिया। इस विद्याधर-सुता का नाम मदनमजरी रखा गया। युवावय होने पर मदनमजरी रति की कल्पना को साकार करती थी। सभी विद्याओ मे प्रवीण, गुणो की आगार और देव-कन्या-जैसी थी। पर मदनमजरी मे एक दोष यह था कि वह नरद्वेषिणी थी। उसे पुरुप के नाम से ही चिढ थी। मदनमजरी की अन्तग्ग सखी लवलिका उसे बहुत समझाती थी कि पुरुष के बिना नारी अपूर्ण है। तू विवाह कर ले, पर मदनमजरी उसे हमेशा झिडक देती थी। मेरी पुत्री नर-द्वेषिणी है, यह जानकारी होने के बाद राजा कनकोदर और रानी कामलता को बहुत चिन्ता हुई।

अपनी चिन्ता को दूर करने के लिए विद्याधर-नरेश कनकोदर ने एक स्वयवर का आयोजन किया, जिसमे बडे-बडे रूपवान और वीर विद्याधर राजा आये। यथासमय मदनमजरी सखियो और धाय माता के साथ स्वयवर मण्डप मे वरमाला लिये आई। वह जिस राजा के सामने खडी होती थी, उसकी धायमाता उस राजा का परिचय उसे देती जाती थी।

विद्युद्दन्त राजा के पुत्र अमितप्रभ, गाधर्वपुर के राजकुमार नागकेसरी, रथनूपुर-चक्रवाल के राजा रतिमित्र के पुत्र रतिविलास आदि अनेक गुणी, वीर, सुन्दर और यशस्वी राजा-राजपुत्रो का परिचय कामलता ने मदनमजरी को दिया, पर मदनमजरी ने किसी को पसद नही किया और अपनी-माँ रानी कामलता से कहा—

"माँ! मैंने सबको देख लिया, पर मुझे कोई पसद नही है। इनमे कोई भी मेरे योग्य नही है।"

यह सुन कामलता मदनमजरी को स्वयवर मण्डप से राजभवन मे ले गई और रोने लगी कि हाय मेरी राजदुलारी के योग्य वर अब कौन हो सकता है। रानी का दुख देखकर लवलिका ने उसे धीरज बधाया—"महारानी जी! आप दुखी न हो। मैं अपनी सखी को पुन समझाऊँगी कि वह किसी विद्यार राजा को पुन पसन्द करने की कोशिश करे।"

उधर स्वयवर मे आये विद्याधर राजा बडे बौखलाये कि हममे से किसी का भी वरण मदनमजरी ने नही किया। यह तो हम सभी का भारी अपमान है। हम इस अपमान का बदला लेंगे" ऐसा सोचकर सब लौट गये।

मदनमजरी ने शृगार, अद्भुत आदि कई रसो का अनुभव किया। थोडी ही देर बीती कि विद्याधर राजा कनकोदर भी विमान से वहाँ आ गए। जैसे ही कनकोदर राजा का विमान नीचे उतरा कि गुणधारण और कुलधर ने खडे होकर उनको प्रणाम किया। उनके बैठ जाने पर सब बैठ गए तो कामलता ने उन्हे सब कुछ बताने के बाद कहा—"मुझे राजकुमार गुणधारण की स्वीकृति मिल गई है। अत शुभ कार्य करने मे देर क्यो ?"

"मैं वही शुभ कार्य करने आया हूँ।" कनकोदर बोले—"जिसको सम्पन्न करने के लिए हम चिन्तासागर मे डूबे रहते थे।" □

[४] गुणधारण और मदनमजरी का विवाह

थोडी देर बाद महाराज कनकोदर का एक गुप्तचर आया। उसने उनके कान मे धीरे-से कुछ कहा और चला गया। उसके जाने के बाद महाराज कनकोदर ने सक्षिप्त विधि-विधान से अपनी पुत्री मदनमजरी का विवाह मधुवारण के पुत्र गुणधारण से कर दिया। छोटे-से समारोह मे उल्लास का सागर लहरा गया। राजा कनकोदर अनेक तरह के रत्न अपने विमान मे साथ लाये थे। मरकत, पद्मराग, वज्र आदि रत्न कनकोदर ने गुणधारण को भेट मे दिये। दोनो—मदनमजरी और गुणधारण की जोडी रति-मदन की सी जोडी लग रही थी।

निर्विघ्न विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद एक विघ्न अचानक आ गया। वह यह कि मदनमजरी के स्वयवर से रुष्ट हुए विद्याधर राजाओ के विमान आकाश मे छा गए। सब चिल्लाने लगे कि हम विद्याधर राजाओ के रहते यह नही हो सकता कि एक साधारण मानव विद्याधर-पुत्री मदन-मजरी को अपनी पत्नी बनाले।

इसी आक्रमण की सभावना का सदेश कनकोदर के गुप्तचर ने उन्हें दिया था। राजा कनकोदर के सैनिक भी कुछ देर पहले आ चुके थे। वे सब भी युद्धोत्साह मे भर गए। राजा कनकोदर के आदेश मात्र की देर थी,

कि दोनो पक्षो की सेनाएँ और उनके सचालक-सेनापति स्तम्भित हो गए। जो जहाँ था, वह वही अधर मे खडा रह गया।

अपनी ऐसी निरुपाय और दीन स्थिति देखकर विपक्षी विद्याधर सोचने लगे—अहा, मदनमजरी और गुणधारण की जोडी कितनी सुन्दर है। ये दोनो एक दूसरे के लिए ही जन्मे थे, तो हम क्यो बाधक बने ? फिर इस राजकुमार की अमित शक्ति तो देखिए कि जिसने हमे जड-पत्थर की प्रतिमा की तरह स्तभित कर दिया। हमे तो अब यही उचित लगता है कि हम इस वीर पुरुष की अधीनता स्वीकार कर इससे क्षमा माँगे।

जैसे ही सव विपक्षी-आक्रामक विद्याधरो के मन मे यह विचार आया, वैसे ही सव मुक्त हो गए। फिर सवने अपने-अपने विमान नीचे उतारे और मदनमजरी सहित गुणधारण की प्रशसा कर क्षमा माँगी। उदार गुणधारण ने सवको क्षमा दान दिया। उधर गुणधारण के पिता मधुवारण को सब समाचारो की जानकारी मिली तो वे भी महारानी सुमालिनी को लेकर विवाह स्थल—उद्यान मे आ गए। दोनो समधी प्रेम से मिले। समधिने मिली' मदनमजरी ने अपनी सास सुमालिनी रानी के चरण छूकर आशीप प्राप्त किया। कुलधर ने राजा मधुवारण को सब वृत्तान्त सुनाया कि किस कारण से यह विवाह आकस्मिक रूप मे करना पडा।

× × ×

ससारी जीव ने अगृहीतसकेता से कहा—

"वहिन अगृहीतसकेता! गुणधारण के भव मे मेरा मित्र पुण्योदय वहुत हृष्ट-पुष्ट और सवल था। जैसे स्वर्ग मे इन्द्र का सम्मान होता है, वैसे ही सब विद्याधर मेरा सम्मान करते थे। मेरे यहाँ रत्नो के ढेर लगे रहते थे। मैं वैभव मे डूवा रहता था। मदनमजरी-जैसी पत्नी को पाकर तो इन्द्र भी अपने भाग्य को सराहता, मैं तो फिर भी राजकुमार था।

"विवाह वाला दिन वडे आनद से वीता। रात्रि प्रिया मदनमजरी के साथ वीती। उसी रात मेरे मित्र कुलधर ने एक स्वप्न देखा, जिसमे पाँच व्यक्तियो ने उससे वात-चीत की। इन पाँच मे तीन पुरुष और दो स्त्रियाँ थी। दूसरे दिन प्रात उसने मुझे अपने स्वप्न के वारे मे वताया। अव मैं तुम्हे इससे आगे की अपनी आत्मकथा सुनाता हूँ। यहाँ वैठे सदागम जी महाराज तो मेरे हर जन्म के वारे मे जानते हैं। अव तुम भी सुनो।"

□

[५] कुलन्धर का स्वप्न दर्शन : कन्दमुनि से वार्त्तालाप

गुणधारण और मदनमजरी के विवाह के दूसरे दिन प्रात काल कुलन्धर गुणधारण के पास पहुँचा और बताया कि मैंने रात एक ऐसा स्वप्न देखा है, जिसमे तीन पुरुष और दो स्त्रियाँ—पाँच व्यक्ति मेरे पास आये। उन्होने मुझसे कहा कि गुणधारण सुखसागर मे डूबा हुआ है। यह सुखोपलब्धि हम पाँचो ने ही उसे कराई है और भविष्य मे भी हम पाँचो ही उसे सुख साधन देगे। यह कहकर पाँचो व्यक्ति अदृश्य हो गए।

फिर यह स्वप्न राजसभा मे राजा मधुवारण को बताया गया। सभा मे उपस्थित विद्वानो ने स्वप्न पर विचार करके कहा कि कुछ देव गुणधारण पर कृपालु हुए हैं। वे देव पाँच है। गुणधारण की सभी अनुकूलताएँ इन्ही पाँच देवो के प्रताप से है।

विद्वानो द्वारा कथित कुलन्धर के स्वप्न पर निर्णय सुनकर गुणधारण सोचने लगा कि यह तो वडी विचित्र वात है कि मित्र कुलधर को पाँच देवो ने दर्शन दिये जिनमे दो स्त्रियाँ थी और मेरे श्वसुर कनकोदर के स्वप्न मे दो देवी और दो देव आये थे, जिन्होने उनसे कहा था कि मदनमजरी के लिए हमने एक पुरुष निश्चित कर रखा है। इसका विवाह उसी के साथ होगा, जिसे हम करायेगे। तो विचारणीय वात यह है कि चार और पाँच के भेद का क्या प्रयोजन हुआ ? मेरे अनुकूल पहले चार देव-देवी थे तो फिर पाच देव-देवी कैसे हो गए ? कनकोदर के स्वप्न वाले देवो ने ही तो युद्धोन्मुख विद्याधरो को स्तम्भित करके मेरे अधीन वना दिया था।

इस तरह गुणधारण दोनो स्वप्नो के अन्तर को नही समझ पाया। उसके दिन वडे सुख से वीतने लगे। धरती पर रहकर भी वह मदनमजरी के साथ देवसुखो का भोग करते हुए जी रहा था। चिन्ता उससे सदा दूर रहती थी। भय का लेश भी उसके पास नही था। यो कुछ दिन वीतने के वाद गुणधारण एक दिन अपने मित्र कुलन्धर और पत्नी मदनमजरी के साथ आह्लादमन्दिर नामक उद्यान को गया तो वहाँ एक मुनि के दर्शन करके प्रफुल्लित हुआ। वन्दना करके उनके सामने वैठा। ये मुनि कन्दमुनि

थे। इन्होने बडी सुन्दर धर्मदेशना दी। कन्दमुनि के निकट गुणधारण ने सदागम और सम्यग्दर्शन को बैठे देखा। उन्हे पहचान कर उनसे निकट का सम्पर्क साधा।

अब तक छिपा बैठा सातावेदनीय भी प्रकट होकर गुणधारण से मिला। सातावेदनीय वेदनीथ राजा का छोटा भाई है। ससारी जीव जब बिबुधालय (देवलोक) मे था, तब सातावेदनीय इसका स्नेही मित्र बन गया था। ससारी जीव जब सप्रमोद नगर मे गुणधारण के रूप मे जन्मा, तब यह भी गुप्तरूप से साथ था और गुणधारण को अनेक सुखो का स्वाद देता था। आज सदागम और सम्यग्दर्शन के साथ वह प्रकट हुआ था।

इन सबके सम्पर्क और दर्शन से महामोह की समस्त सेना अत्यन्त निर्बल/मृतप्राय हो गई थी। इससे चारित्रधर्मराज को बडा सतोष हुआ। उन्होने अपने मत्री सद्बोध से कहा—

"मन्त्रिवर! ससारी जीव को सभी अनुकूलताएँ प्राप्त है। अत यह बडा सुन्दर अवसर है कि तुम पुत्री विद्या को लेकर उसके पास चले जाओ। ससारी जीव कन्द मुनि के समक्ष बैठा है। इस समय वह विद्या को तुरन्त स्वीकार कर लेगा।"

"विद्या को ले जाने के विषय मे अभी कुछ समय हमे प्रतीक्षा करनी पडेगी।" सद्बोध मत्री ने चारित्रधर्मराज से कहा—"ससारी जीव (गुणधारण) के दो अन्तरग मित्र पुण्योदय और सातावेदनीय अभी उसके साथ है। इनके द्वारा गुणधारण अभी कुछ सुख-भोग भोगेगा। इन दोनो के रहते ससारी जीव बाहरी सुखो को ही सुख मानता रहेगा। अत इस समय विद्या को न भेजकर आप अपने पुत्र गृहीधर्म को सपत्नीक ही उसके पास भेजिए।

"गृहीधर्म के जाने से ससारी जीव महामोह को अधिक त्रास दे सकेगा। उसके कर्म निर्बल बनेगे।"

इसके बाद कर्मपरिणाम की आज्ञा लेकर गृहीधर्म को गुणधारण के पास भेज दिया गया। कन्दमुनि ने श्रावकधर्म की देशना देकर उसे प्रकट किया। वह अपने बारह सेवको (१२ श्रावक व्रतो) के साथ प्रकट हुआ। गुणधारण ने बारहो सेवको—व्रतो सहित गृहीधर्म को धारण किया।

गृहीधर्म को सम्मान सहित धारण करने के बाद गुणधारण ने कन्द मुनि से कनकोदर और कुलन्धर के स्वप्नो के बारे मे बताकर पूछा कि प्रभो! एक के स्वप्न मे चार स्त्री-पुरुष और एक के मे पाँच स्त्री-पुरुषो ने

इन राजा की अनुकूलता से तुझे सदागम से स्नेह हुआ है तथा सम्यग्दर्शन से मित्रता हुई है। कर्मपरिणाम ने पुण्योदय को प्रोत्साहित किया, इस कारण तेरा जन्म मधुवारण राजा के पुत्र रूप में हुआ और विद्याधर चक्रवर्ती की पुत्री मदनमजरी से तेरा विवाह भी पुण्योदय ने कराया।

"राजन्! राजा कनकोदर को स्वप्नदर्शन मे मदनमजरी के साथ तेरा विवाह कराने की कहने वाले चार पुरुष कर्मपरिणाम, कालपरिणति, भवितव्यता और स्वभाव थे। इन्होने ही मदनमजरी को विद्याधरो के विमुख किया था। इन चारो की बात केवल कर्मपरिणाम राजा ने ही कनकोदर राजा से कही थी।

"बाद मे कर्मपरिणाम ने पुण्योदय से कहा कि तुम ससारी जीव के बारे मे प्रकट होकर कुछ क्यो नही कहते? सब कुछ करने-कराने वाले तो तुम ही हो। अत जब कुलन्धर को स्वप्नदर्शन हुआ तो उसमे पुण्योदय भी शामिल हो गया। इस प्रकार कर्मपरिणाम, कालपरिणति, स्वभाव, भवितव्यता के साथ पुण्योदय के मिलने से पाँच हो गए। यही कारण है कि कनकोदर को स्वप्न मे चार और कुलन्धर को स्वप्न मे पाँच स्त्री-पुरुष दिखाई दिये थे।

"राजन्! ये चारो और पाँचो ही आपके समस्त कार्यों की योजना बनाते रहते हैं।"

× × ×

"अगृहीतसकेता! मैंने निर्मलाचार्य से अपने स्वप्न की जिज्ञासा शका का समाधान प्राप्त करने के बाद पुन पूछा कि मुझे जो सुखोपलब्धि हुई है, वह क्या केवल पुण्योदय ने ही कराई है, जिसकी प्रेरणा उसे अन्य चारो ने दी हो।"

उस पर निर्मलाचार्य ने पुण्योदय, कर्मपरिणाम आदि के बारे मे मुझे कुछ विस्तार से बताया-समझाया। उसी को मैं सक्षेप मे तुम्हे सुनाता हूँ। निर्मलाचार्य का जो कथन मैं तुम्हे अब सुनाऊँगा, वह मेरी—ससारी जीव की आत्म-कथा का सार-सक्षेप ही है। □

[७]

कार्य-कारण शृखला

निर्मलाचार्य ने राजा गुणधारण से कहा—

मैंने तुझे अन्तरग राजाओ, अन्तरग कन्याओ आदि के जो स्वरूप बताये थे, उन्हे याद करके इस मिथ्या ससार को क्यो नही छोड देती ?"

इस प्रकार अनुसुन्दर ने एक बार पुन अपनी आत्मकथा को सक्षेप मे दुहरा कर सुललिता को उद्‌बोधन दिया।

जिस समय अनुसुन्दर सुललिता को उद्‌बोधन दे रहे थे, उसे सुनते-सुनते राजपुत्र पुण्डरीक को मूच्छी आ गई। उसके माता-पिता रानी कमलिनी और राजा श्रीगर्भ घबरा गए। शीतलोपचार से जब राजपुत्र की मूच्छी दूर हुई तो उसे जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसने अपने माता-पिता से दीक्षा की अनुमति मांगते हुए कहा—

"मुझे अपना पूर्वभव याद आ गया है। जब अनुसुन्दर गुणधारण थे, तब मैं इनका मित्र कुलन्धर था। मैंने इन्ही के साथ निर्मलाचार्य से दीक्षा ग्रहण की थी। अब मैं आप से दीक्षा की अनुमति चाहता हूँ।"

यह सुन रानी कमलिनी मोहवश रोने लगी और बोली—"अरे पुत्र! मैं तुझे श्रमण नही बनने दूंगी।"

इस पर राजा श्रीगर्भ रानी कमलिनी को समझाने लगे—

"प्रिये! जब तुम्हारे गर्भ मे पुण्डरीक आया था, तब तुमने स्वप्न मे एक भव्य पुरुप अपने मुख मे प्रवेश होकर निकलते देखा था। मैंने तभी तुम से कहा था कि तुम एक भव्य जीव को जन्म दोगी, किन्तु वह घर मे नही रहेगा। दीक्षा ले लेगा, अत अब तुम इस भव्य पुत्र को अपना कल्याण करने से मत रोको।

"प्रिये! अल्पायु का हमारा पुत्र ससार छोडने को तत्पर है और हम वृद्ध होकर भी दीक्षा न लें तो इससे बडा मजाक और क्या होगा?"

यह सुनकर रानी कमलिनी भी दीक्षा लेने तैयार हो गई। राजा श्रीगर्भ ने भी दीक्षा लेने का निश्चय किया।

पुण्डरीक को यो प्रतिबोधित देख सुललिता बडी खिन्न हुई। उसकी खिन्नता बहुत सात्त्विक और धार्मिक थी। उसने अपने मन की बात साध्वी महाभद्रा मे कही, जिसका समाधान अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने किया। □

[२१] सुललिता की शका अनुसुन्दर द्वारा समाधान

सुललिता ने साध्वी महाभद्रा से कहा—

"भगवती ! जब अनुसुन्दर चक्रवर्ती ससारी जीव रूपी चोर बनकर अपनी आत्मकथा सुना रहे थे, मैं तब सोच रही थी कि इसका गूढाशय मैं आपसे पूछूँगी, क्योकि आप प्रज्ञाविशाला हैं। बाद में अनुसुन्दर ने मुझे पुन उद्‌बोधन दिया, लेकिन मुझ पर तनिक भी प्रभाव नही पडा। मेरे देखते-देखते पुण्डरीक को प्रतिबोध हो गया। पर अभी तक मुझ पर वैराग्य की छाया क्यो नही पडी ? सब कुछ देख-सुनकर भी मेरा हृदय क्यो नही बदला ? क्या मैं अभागिनी ही रहूँगी ? आप प्रज्ञाविशाला हैं, अत आप मेरी शका का समाधान कीजिए।"

"तुम्हारी शका का समाधान मैं करूँगा।" अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने कहा—"तुम्हे प्रतिबोध देने के लिए ही मैंने अपने पूर्वभव तुम्हे सुनाये थे। तुम अभी तक प्रतिबोधित नही हुईं, इसका कारण तुम्हारे पूर्वभव का कर्मबध है।

"सुललिता ! जब तुम मदनमजरी थी, तब भी पुरुषद्वेषिणी थी और इस भव मे भी पुरुषद्वेषिणी बनी। पूर्वभव के सस्कार पीछे पड़े रहने हैं।

"अब मैं तुम्हारे प्रतिबोधित न होने का कारण बताता हूँ।

"सुललिता ! मदनमजरी के भव में तुमने मेरे साथ ही निर्मलाचार्य से दीक्षा ली थी। मैं गुणधारण के रूप मे श्रमण बना था। तब तुम में एक विचार-दोप आया था कि चारित्र-पर्याय का पालन गुमसुम चुपचाप करना चाहिए। इस दोष के कारण न तो तुम देशना देती थी और न गुरु मुनियो की देशना सुनती थी। पठन-पाठन के शब्दो को भी तुम सुनना पसन्द नही करती थी। इससे तुम्हारा हृदय इतना मलिन-मैला हो गया कि तुमको प्रतिबोध नही हुआ। बस, यही एक बात अच्छी रही कि तुममे दुराग्रह नही था। तुमने धर्म-प्रचार का विरोध नही किया।"

अपने पूर्वभव के विचार-दोष को सुनते-सुनते सुललिता मूर्च्छित हो गई और जब होश आया तो उसे भी जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हो गया। अपने पूर्वभव को स्पष्ट देखकर उसे प्रतिबोध हुआ और दीक्षा लेने को तत्पर होते हुए अनुसुन्दर से बोली—

"इस समय मेरा रोम-रोम प्रतिबोधित है। मैं दीक्षा लिये बिना नही रह सकती। लेकिन जब मैंने अपने माता-पिता से साध्वी महाभद्रा के साथ आने की अनुमति ली थी तो उन्होने मुझ से यह वचन लिया था कि मैं उनकी अनुमति के बिना दीक्षा नही लूँगी। कितना अच्छा होता कि मैं यही

सबके साथ दीक्षा लेती। अब मुझे माता-पिता से अनुमति लेने उनके राज्य मे जाना पडेगा।"

"इसकी तुम चिन्ता मत करो।" अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने कहा—'वह देखो, तुम्हारे पिता राजा मगधसेन और माता सुमगला यही आ रहे है।"

थोडी देर बाद राजा मगधसेन और रानी सुमगला—सुललिता के पिता-माता सैन्य दल लेकर विशाल चित्तरम उद्यान मे आ गये। सुललिता ने उन्हे प्रणाम कर अब तक समस्त इतिवृत्त सक्षेप मे सुनाकर दीक्षा की अनुमति माँगी। उसके माता-पिता ने कहा—

"पुत्री! जब तुम साध्वी बन रही हो तो हम क्या तुमसे पीछे रहेगे? तुम्हारे साथ हम भी समन्तभद्राचार्य से दीक्षा लेगे।"

इस प्रकार अनुसुन्दर चक्रवर्ती, राजपुत्र पुण्डरीक, राजा श्रीगर्भ, रानी कमलिनी, सुललिता, राजा मगधसेन और रानी सुमगला—सात भव्य जीवो ने चित्तरम उद्यान मे एक साथ दीक्षा लेने का निश्चय किया। सबकी सामूहिक दीक्षा तैयारियाँ शुरू हो गईं। □

[२२] सात दीक्षाएं अनुसुन्दर मुनि का स्वर्गगमन

अनुसुन्दर चक्रवर्ती अपने राजचिन्ह उतार कर अपने ज्येष्ठ पुत्र राजवल्लभ को सौंप चुके थे। श्रीगर्भ राजा ने शखपुर का और मगधसेन ने रत्नपुर का राज्य भार अनुसुन्दर के द्वितीय पुत्र पुरन्दर को सौप दिया। तदनन्तर दीक्षा विधि प्रारम्भ हुई। सबसे पहले अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने केश लु चन कर मुनिवेश धारण किया।

फिर राजपुत्र पुण्डरीक, उनके पिता श्रीगर्भ, माता कमलिनी, राजपुत्री सुललिता, उसकी माता सुमगला और पिता मगधसेन ने मुनिवेश धारण किया। सात लोगो ने ससार त्यागकर अक्षय सुख के हेतु अपनी चित्तवृत्ति अटवी मे चारित्रधर्मराज का शासन स्थापित किया। उस समय देवो ने पुष्प वृष्टि की। केवली भगवान समन्तभद्राचार्य ने सातो मुमुक्षुओ को सयम मे स्थिर रहने का धर्मोपदेश दिया। सभी साधु-साध्वी नित्य की धर्म-क्रियाएँ करने लगे। इस प्रकार दीक्षा के बाद रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त हुआ।

उस समय राजर्षि अनुसुन्दर एकान्त में ध्यानस्थ हुए। उनकी लेश्याएँ अधिक विशुद्ध होती चली गईं और गुणस्थान पर उत्तरोत्तर आरूढ होते गये। ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँच गये। अन्य मुनियो को समन्तभद्राचार्य ने बताया कि राजर्षि अनुसुन्दर का मरण काल निकट आ गया है। तब सभी मुनि उनके समक्ष अन्तिम आराधना करने लगे। उसी समय उन्होने नश्वर देह को त्याग स्वर्ग को गमन किया। वे तेतीस सागरोपम आयुष्य ऋद्धिमान देव बने।

एक ही दिन में सुललिता को अनुसुन्दर के प्रति राग उत्पन्न हो गया था। अत साध्वी सुललिता को अनुसुन्दर मुनि की मृत्यु से अत्यन्त दु ख हुआ। यह देख समन्तभद्राचार्य ने उसे उपदश दिया, जिससे साध्वी का शोक शान्त हो गया। धर्मोपदेश के क्रम में उन्होने अनुसुन्दर का भविष्य बताते हुए कहा—

"राजर्षि अनुसुन्दर धर्म की नाव पर बैठकर कृतकृत्य हुए है। उनकी मृत्यु शोक के लिए नही, आनन्द मनाने के लिए है। देवायुष्य पूर्णकर वे अयोध्यानगरी में गगाधर राजा और पद्मिनी रानी के पुत्र बनेंगे। उनका नाम अमृतसार होगा। देवो जैसे भोगो को भोगने के बाद वे दीक्षा लेंगे और फिर मोक्ष प्राप्त कर सदैव के लिए जन्म-मरण से मुक्त हो जायेंगे।"

यह सुनकर युवा-तरुण मुनि पुण्डरीक ने पूछा—

"भगवान्! जब अनुसुन्दर मुक्त हो जायेंगे, तब उनकी चित्तवृत्ति अटवी में रहने वाले अच्छे-बुरे लोगो का क्या होगा? वे कहाँ रहेंगे, कहाँ जायेंगे?"

इस पर आचार्य बताने लगे—

"मुनि पुण्डरीक! अनुसुन्दर का जीव जब देवायुष्य पूर्ण करके अयोध्या का राजपुत्र अमृतसार बनकर दीक्षा ग्रहण करेगा, तब उसकी अन्तरग दसो पत्नियाँ—शान्ति, दया, मृदुता, सत्यता, ब्रह्मरति आदि उसकी चित्तवृत्ति मे प्रकट होगी। चारित्रधर्मराज की सेना भी प्रकट होगी। इन सबके साथ अमृतसार मुनि अपने अन्तरग राज्य का भोग करेंगे। इस क्रम में वे चार घाती कर्मों और शेष चार कर्मो का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। फिर वे अनन्त आनद, अनन्त ज्ञान आदि को प्राप्त करेंगे। इससे पूर्व दूसरे पक्ष के मोहादि सब शत्रु पूर्णत नष्ट-समाप्त हो जाएँगे।

पुण्डरीक मुनि! इसके साथ ही अनुसुन्दर-अमृतसार के जीव का

अपनी दुष्ट पत्नी भवितव्यता से भी सदैव के लिए छुटकारा हो जाएगा। महामोह के नष्ट हो जाने से भवितव्यता अत्यन्त दु खी होकर विचार करेगी कि हाय ! मैंने महामोह का पक्ष लेकर अच्छा नही किया। मैं सब कुछ जानने का घमण्ड करती थी, मेरा वह घमण्ड चूर-चूर हो गया, क्योंकि मैं उस तत्त्व को नही जान सकी, जिसे सभी जानते हैं। वह यह कि अस्थिर ससार नष्ट होने वाला है और स्थिर धर्म ही बना रहेगा। इस प्रकार भवितव्यता सोच-विचार कर चुप हो जाएगी। सक्षेप मे राजर्षि अनुसुन्दर के अन्तरग कुटुम्बियो का यही भविष्य है। □

[२३] द्वादशांगी का सार पुण्डरीक मुनि की शकाएँ

अपनी एक शका का समाधान प्राप्त कर पुण्डरीक मुनि ने दूसरी शका बताई—

"गुरुदेव ! भगवान द्वारा प्ररूपित बारह अग सूत्र रूपी द्वादशागी बहुत विशाल है। कृपया, सक्षेप मे इसका सार बताइए।"

पुण्डरीक मुनि की शका का समाधान करते हुए समन्तभद्राचार्य बोले—

"मुनिवर ! समस्त जैनागम का सार ध्यानयोग ही है। मुक्ति के लिए ध्यान सिद्धि आवश्यक है और ध्यान सिद्धि के लिए मन की चचलता को दूर करना परमावश्यक है। अत द्वादशागी का सार शुद्ध ध्यान-योग है। शेप मूल और उत्तर गुण ध्यान-योग के अगरूप मे स्थित हैं।"

एक शका का समाधान होने के बाद पुण्डरीक मुनि ने दूसरा प्रश्न किया—

"गुरुदेव ! मोक्ष प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न मान्यताओ के आचार्यो ने भिन्न-भिन्न मार्ग बताये हैं। किसी ने शिव का जाप बताया है तो किसी ने विष्णु का। कुछ पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायाम द्वारा हृदय-कमल को विकसित करने को कहते है। कुछ ॐ—प्रणवाक्षर का जाप बताते हैं। इस प्रकार मोक्ष-मुक्ति प्राप्त करने के अनेको उपाय बताये गए है। ध्यानयोग की भी भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ बताई हैं, क्या ये सब मोक्ष के अधिकारी हैं ?"

इसका समाधान करते हुए समन्तभद्राचार्य कहने लगे—

"पुण्डरीक मुनि ! केवलज्ञानी भगवान ने जो पद्धति बताई, उसमें कुछ अपूर्ण-अधकच्चरे आचार्यो ने अपने-अपने अहकार को पुष्ट करने के लिए नये-नये ग्रन्थ रच दिये। इनमें कुछ तो केवली प्ररूपित सार तत्त्व लिया और कुछ अपना मिलाकर उसे भ्रान्त बना दिया। सर्वज्ञ केवली भगवान के कुछ अश होने से इन आचार्यों के शास्त्र भी प्रसिद्धि पा गए और इनके कुछ अनुयायी भी बन गए। वस्तुत जिनधर्म ही सार है। शेष सब भ्रान्त धर्म हैं, जो लक्ष्य तक नही ले जाते।

"पुण्डरीक मुनि ! उपाधि रहित होकर ध्यानयोग की साधना करने वाली निर्मल आत्मा चाहे जिस दर्शन या तीर्थ को मानने वाली हो, उसे भावत जैनशासन के अन्तर्गत ही मानना चाहिए, क्योकि जैनदर्शन प्राणि-मात्र के कल्याण की दृष्टि से बहुत व्यापक और गहरा है। उसमें अन्य धर्मों की सभी अच्छी बाते तो हैं, पर मिथ्या बाते नही हैं।"

पुण्डरीक मुनि ने पुन पूछा—

"भगवन् ! सभी को मोक्ष प्राप्त प्राप्त करना है, लेकिन सब आचार्यों के ध्येय भिन्न-भिन्न हैं, इसमे क्या परमार्थ है ?"

उत्तर में समन्तभद्राचार्य बोले—

"आर्य पुण्डरीक ! जिस प्राणी को मोक्ष प्राप्त करना है, उसे चित्त के सकल्प-विकल्प रूपी जालो का निरोध करना पडेगा। साथ ही, राग-द्वेष आदि का विच्छेद करने वाले सभी उपायो का प्रयोग करना होगा। ऐसे साधन उपाय चाहे जैनदर्शन के हो, चाहे अन्य आचार्यो के हो, इससे कोई अन्तर नही पडता है।

"पुण्डरीक मुनि ! भिन्न-भिन्न जीवो की रुचि भिन्न-भिन्न होती है। किसी के चित्त की शुद्धि एक आलम्बन से होनी है तो किसी के चित्त की शुद्धि दूसरे आलम्बन से। अत किसी को अन्य-अन्य ध्येयो से चित्त शुद्धि हो जाए तो बुराई क्या है ? कुछ भी नही। इसके विपरीत जो बुद्धिहीन दार्शनिक या आचार्य हिंसा के अच्छे परिणाम बतलाते है और देवी-देव के स्मरण मात्र से पाप-नाश होने का दावा करते है, वे सब विवेकहीन ही कहे जायेगे।"

"अब एक शका और है।" पुण्डरीक मुनि ने कहा—"जैसे आप जैन-दर्शन को व्यापक बताते है, वैसे ही अन्य दार्शनिक-आचार्य अपने-अपने धर्म

को व्यापक बताते हैं। ये लोग अपने-अपने दर्शन के संस्थापको को सर्वज्ञ कहते है, दूसरे के दर्शनो की निन्दा करते है तथा अपने दर्शन को श्रेष्ठ मानते है। इसका भी स्पष्टीकरण कीजिए।"

समन्तभद्राचार्य कहने लगे—

"आर्य पुण्डरीक ! परमार्थ दृष्टि से विश्व मे एक ही धर्म है। धर्म के क्षमा, निर्लोभता, दया, आदि दस लक्षण बताये है। इन दस लक्षणो को धारण करना ही वस्तुत धर्म है। धृ धारणे धातु से धर्म शब्द बना है। जो धारण किया जाता है वह धर्म है। मिथ्यादृष्टि भी क्षमा आदि सद्गुणो को धारण करता है पर सम्यग्दर्शन के अभाव मे वे सद्गुण जीवनोत्थान में जिस रूप मे सहायक होने चाहिए नही हो पाते। मिथ्यादर्शन के संस्पर्श से सद्गुणो मे चमक-दमक पैदा नही होती। बहुमूल्य हीरे आदि रत्न लोहे आदि कुधातुओ मे जड देने से शोभा नही पाते। वही स्थिति मिथ्यादर्शन के कुधातुओ में जडने पर सद्गुणो की होती है।"

पुण्डरीक मुनि ने पुन जिज्ञासा प्रस्तुत की—"भगवन् ! सभी साधक मोक्ष प्राप्त करना चाहते है, क्या केवल सम्यग्दर्शन से ही मोक्ष हो जायेगा ? ज्ञान आदि की तो आवश्यकता नही रहेगी न।"

आचार्य ने कहा—"वत्स ! मोक्ष के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो की आवश्यकता है। सम्यग्दर्शन की परिपूर्णता चतुर्थ गुणस्थान में हो जाती है। सम्यग्ज्ञान की पूर्णता तेरहवे गुणस्थान मे हो जाती है और सम्यक्चारित्र की परिपूर्णता चौदहवे गुणस्थान में होती है। ज्यो ही ये तीनो परिपूर्ण होते है त्यो ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है। एक की जरासी अपूर्णता भी मोक्ष के लिए बाधक है।

"मोक्षाभिलाषी साधक राग-द्वेष के दलदल मे नही फँसता। मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ, अन्य निकृष्ट—इस प्रकार की हीन भावना उसमे नही होती। वह सदा-सर्वदा समता के सागर मे अवगाहन करता है। वह मधु-मक्खी की तरह जहाँ से भी सद्गुणो की मिठास देखता है उसे ग्रहण करता है। उसका जीवन निराला होता है और उसकी दृष्टि विशुद्ध होती है।"

इस प्रकार पुण्डरीक मुनि समय-समय पर सद्गुरु से अपनी शंकाओं का समाधान कर ज्ञानार्जन कर रहे थे। और साथ ही उत्कृष्ट तप साधना से अपने जीवन को पावन और पवित्र बना रहे थे।

साध्वी सुलन्निता सोचा करती थी, गुरुकर्मी अथवा भारी होने से मुझे बोध प्राप्त करने मे कठिनाई हुई थी, मुझ जैसा गुरुकर्मी सवेग से, [illegible]

से पवित्र नही हो सकता, उसे तप की अग्नि में शुद्ध होने की नितान्त आवश्यकता है। ऐसा सोचकर साध्वी सुललिता ने समन्तभद्राचार्य से कठोर तप करने की अनुमति प्राप्त की और वे क्रमश कठोर, कठोरतर और कठोरतम तप करने लगी।

साध्वी सुललिता ने रत्नावली, कनकावली, मुक्तावली, सिंह-विक्रीडित आदि तप किये। उन्होने भद्रा, महाभद्रा आदि प्रतिमाएँ धारण की। आयबिल तप और चद्रायण तप करके आत्मा को शुद्ध किया। तप के प्रभाव से वे निष्पाप और निर्मल हो गई, क्योकि—

तप सुखप्रद दुख दोष नसावा।

इस प्रकार अनुसुन्दर मुनि के स्वर्ग जाने के बाद से शेष छहो मुनि ससार सागर को पार करने के लिए समन्तभद्राचार्य की देख-रेख और निर्देशन मे कठोर साधना कर रहे थे। इनमे से कुछो को इसी भव मे मुक्त होना था और कुछ स्वर्ग जाने के बाद पर-भव में मुक्ति-लाभ प्राप्त करेगे। □

[२४] मोक्ष-गमन

मुनि पुण्डरीक द्वादशागी के पारगामी विद्वान बन गये। आचार्य समन्तभद्र ने उन्हे आचार्य पद दिया। इस प्रकार एक सुयोग्य शिष्य मुनि को आचार्य बनाकर समन्तभद्राचार्य ने समाधिमरण प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया।

कालान्तर मे आचार्य पुण्डरीक ने प्रगति की। उन्हे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ, फिर वे केवली बने। अपना अन्तिम समय जान उन्होने अनशन व्रत लिया और अपने सुयोग्य शिष्य धनेश्वर को आचार्य पद प्रदान कर नश्वर शरीर को त्याग कर शिवपुर—मोक्ष प्राप्त किया।

आर्या महाभद्रा ने प्रवर्तिनी के सभी कर्तव्य पूरे किये और मरकर वे भी मोक्ष को गई।

साध्वी सुललिता ने कठोर तप द्वारा आत्मा को निर्मल बना लिया था। वे भी देह त्यागकर मोक्ष को गई।

राजर्षि श्रीगर्भ और साध्वी कमलिनी—दोनो पण्डितमरण का वरण

कर देवलोक के देव-देवी बने। मुनि मगवसेन और साध्वी सुमगला भी देवलोक को गए।

चित्तरम उद्यान मे जिस-जिसने अनुसुन्दर चक्रवर्ती—ससारी जीव की आत्मकथा सुनकर ममन्तभद्राचार्य से दीक्षा ली थी उनमे से सभी को सद्गति मिली। कुछ मोक्ष को गए और कुछ आगे के भवो मे मोक्षगामी बनेंगे। □

[२५] उपसहार सार सक्षेप

कोई भी मनुष्य कही भी जन्म ले, पर वे सब मनुजगति नगरी मे रहते है। बाह्य दृष्टि से उनके माता-पिता कोई भी हो, पर गूढार्थ से यथार्थत सभी कर्मपरिणाम और कालपरिणति की सन्तान ही हैं। उनके नाम कुछ भी हो, पर लघुकर्मी जीव 'भव्यपुरुष' कहलाते है, जैसे कि शखपुर का राजकुमार पुण्डरीक 'भव्यपुरुष' था और कर्मपरिणाम एव कालपरिणति का पुत्र था।

समन्तभद्राचार्य के वचन सुनकर साध्वी महाभद्रा उनके गूढार्थ को तुरन्त समझ गई थी, अत वे प्रज्ञाविशाला कहलाई। ऐसी सभी जीवआत्माएँ प्रज्ञाविशाला ही है।

सुललिता जैसी आत्माएँ अगृहीतसकेता होती है, जो गुरुकर्मी तो होती है, देर से बोध प्राप्त करती हैं, पर उनका भविष्य उज्ज्वल होता है। ऐसे जीवो को कभी-न-कभी सन्त-महात्मा का सग अवश्य प्राप्त होता है और यह सग उन्हे कल्याण परम्परा प्रदान करता है।

अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने ससारी जीव के रूप मे अपनी जो आत्मकथा सुनाई थी, वह प्राय सभी जीवो पर लागू होती है।

जितने जीव मोक्ष को जाते हैं, लोकस्थिति के सार्वजनिक नियोग के अनुसार कर्मपरिणाम की आज्ञा मे ही जाते है और इतने ही जीव भवितव्यता के वश असव्यवहार नगर से बाहर निकलते हैं।

मनुष्य भव बडी कठिनाई से प्राप्त होता है। मूर्ख मनुष्य वैश्वानर, हिंसा, शैलराज, मोह, पापोदय, सागर, परिग्रह आदि से प्रेम स्थापित कर स्वय को गर्त मे गिरा देता है—पापी पिंजर—नरक का बध करता है।

हमारा रुचिकर साहित्य

जैन कथाएँ (भाग १ से १०८)	३) प्र भाग
चिन्तन की चादनी	३)
विचार रश्मिया	७)
विचार वैभव	२)
बिन्दु मे सिन्धु	२)
प्रतिध्वनि	
खिलती कलियाँ मुस्कराते फूल (द्वि स)	५)
शाश्वत स्वर	३)
खिलते फूल	२)
पचामृत	३)
जीवन की चमकती प्रभा	३)
सीप और मोती	३)
फूल और पराग (द्वितीय सस्करण)	३)
गागर मे सागर	३)
सोना और सुगन्ध	३)
सत्य और तथ्य	४)
जिन खोजा तिन पाइयाँ	४)
गहरे पानी पैठ	५)
आस्था के आयाम	४)
बोलती तस्वीरे	३)
धरती के फूल	३)
शूली और सिंहासन	४)
अतीत के चलचित्र	४)
बुद्धि के चमत्कार (द्वि स)	४)
उपन्यास	
धरती का देवता	१५)
किनारे किनारे	५)
सती का शाप	५)
पुण्य पुरुष	५)
कीचड और कमल	२०)